पूर्व्वक, गो, भूमि और सुवर्ण दान करनेसे, मनुष्य दुःखसङ्कुल संसारमें और जन्म-ग्रहण नहीं करता। वस्त्रदानसे दीर्घायु, पुस्तक दानसे ज्ञान, अन्नदानसे सम्पत्ति, और कन्यादानसे कीर्त्ति मिलती है। हे हरे! अन्यत्र व्रत, दान, जप तप, आदि जो कर्म्म किया जाय, गङ्गा तीरमें करनेसे वह समस्त ही कोटि गुणाधिक्य होता है। हे विष्णो! जो मनुष्य गङ्गातीरमें यथा-विधि सवत्साधेनु दान करते, वह, कामधेनु-दाताके सहस्र पितृगण, सुहृद बान्धवगणके साथ साथ सर्व्वरत्नालङ्कृत और सर्व्व-समृद्धिसम्पन्न होकर धेनु रोम-सम-संख्यक युग गोलोकमें अथवा मेरे लोकमें देव-गणके भी अलभ्य नानाविध कामभोग्य समुदय भोग करनेके पश्चात्, धनधान्यसमृद्ध, रत्नकाञ्चनसम्पन्न, शीलविद्यासमन्वित गृहं-शमें जन्म ग्रहण करते हैं। वहां पुत्र-पौत्रसमन्वित होकर विपुल भौम भाग्यराशि भोग करनेके पश्चात् पूर्व्वजन्म-वासनावशसे काशीधाममें उत्तरवाहिणी गङ्गाके समीपस्थ होकर विश्वेश्वरकी आराधना करते हुए यथाकालमें देहान्त होनेपर मुक्ति पाते हैं। गङ्गातीरमें षष्टि दण्ड परिमित भूभाग जो मनुष्य दान करते हैं, उनका पुण्यफल सुनो; हे हरे! वह मनुष्य, उक्त भूभागके त्रसरेणु सम-संख्यक युग, इन्द्रचन्द्रलोकमें हृदयप्रिय भोग्यनिचय भोग करनेके पश्चात्, महाधर्म्म-परायण, सप्तद्वीपाधिपति होकर सम्पूर्ण नरकस्थ पितृगणको स्वर्गमें पहुंचाते हैं और स्वर्गस्थ सकल पितृगणको मुक्तिलाभ करा वह महातेजाः स्वयं अन्तमें ज्ञानासि द्वारा पाञ्चभौतिक अविद्या छेदन कर, परम वैराग्य लाभ करते हुए उत्तम योगयुक्त होकर अथवा अविमुक्त क्षेत्र पाकर परम ब्रह्मको पाते हैं। हे हरे! हे विष्णो! जो मनुष्य गङ्गातीरमें अशीति रत्तिका परिमित अत्युज्ज्वलवर्णसम्पन्न सुवर्ण भी, वर्णश्रेष्ठको दान करते, वह मनुष्य ब्रह्माण्डमध्यवर्ती सर्व्वलोकमें सर्व्व-पूजित और सर्व्वैश्वर्य्यसम्पन्न होकर मणि-काञ्चनखचित सर्व्वगामी शुभ विमानमें अधिष्ठानकर महाप्रलय काल पर्य्यन्त मनोहर भोग्यसमूहको भोग करते हैं, अनन्तर जम्बूद्वीपमें प्रतापसम्पन्न एक-च्छत्री राजा होकर अविमुक्त क्षेत्र लाभकर निर्व्वाण पदको प्राप्त होते हैं। जन्म-नक्षत्रमें भक्तिपूर्व्वक गङ्गास्नान करनेसे आजन्म-सञ्चित पापराशिसे क्षणमें मुक्ति-लाभ होता है। वैशाख, कार्त्तिक और माघ मासमें गङ्गास्नान दुर्लभ है; अमा-वस्यामें गङ्गास्नानसे शतगुण, संक्रान्तिमें सहस्र गुण, चन्द्रसूर्य्यग्रहणमें लक्षगुण और व्यतीपातमें अनन्त फल होता है। विषुव संक्रान्तिमें गङ्गास्नानसे अयुत-गुण, उत्तरायण दक्षिणायन संक्रान्तिमें दशलक्षगुण फल होता है। सोमवारमें

चन्द्रग्रहण और रविवारमें सूर्य्यग्रहण होनेसे चूड़ामणियोग होता है, चूड़ामणि योगमें गङ्गास्नानका असंख्य फल है। हे विष्णो! स्नान, दान, जप, होम—यह गङ्गा तीरमें चूड़ामणियोगमें—जो जो करेंगी, वह समस्त ही अक्षय है। श्रद्धा-भक्तियुक्त होकर विधिपूर्व्वक गङ्गास्नान करनेसे, ब्रह्मघाती भी शुद्धि लाभ करते हैं और पातकीकी बात क्या कहना होगी? क्रिमि, कीट, पतङ्गादि जो जीव गङ्गातीरमें मरते हैं और जो सब वृक्ष गङ्गातीरसे गङ्गामें गिरकर विनष्ट होते हैं, वह भी परम गतिको प्राप्त होते हैं। हे हरे! गरुड़ध्वज! ज्यैष्ठ मास, शुक्लपक्ष, हस्तानक्षत्रयुक्त दशमी तिथिमें, सबुद्धिनर अथवा नारी, गङ्गातीरमें भक्तिभावसे निशामें जागरण करेंगी और दिनमें दश-विध सुगन्ध पुष्प, नैवेद्य, दशविध फल, दश प्रदीप और दशाङ्ग धूप द्वारा यथा-विधि श्रद्धापूर्व्वक दशवार गङ्गा पूजा करेंगी। दश प्रसृति सघृत तिल गङ्गाजलमें निक्षेप करेंगी; निम्नलिखित मन्त्र पाठपूर्व्वक गुड़-शक्तमय दशपिण्ड प्रदान करेंगी। इसके बाद 'नमः शिवायै,' अनन्तर 'नारायण्यै,' फिर 'दशहरायै, शेषमें 'गङ्गायै,' इस मन्त्रके सर्व्वशेषमें स्वाहा और सबसे पहले प्रणव योग करेंगी, उससे सर्व्वशुद्ध विंशत्यक्षर मन्त्र होगा। पूजा, दान, जप, होम, इसी मन्त्रसे होगा। पञ्चामृत द्वारा विशोधिता गङ्गादेवीकी प्रतिष्ठाकर पूजा करेंगी। अनन्तर उनका ध्यान करेंगी। गङ्गा चतु-र्भुजा, त्रिनेत्रा, नदनदीसेविता, उनके शरीरयष्टिमें लावण्यामृत खिलता फिरता है; उनके उत्तम चतुर्भुजमें पूर्णकुम्भ, शुक्लपद्म, वर और अभय विराजमान है। वह अयुत शशधर-सदृशी अति सौम्याकृति हैं, वह चामरव्यजन-वीजिता और श्वेतच्छत्र-शोभिता हैं। वह अमृतसेकमें महीतल प्लावित करती हैं, दिव्यगन्ध उनके चरण-युगल त्रैलोक्यवासियोंके पूजित हैं, महर्षिगण उत्तमरूपसे उनका स्तव करते हैं। ध्यानके अन्तमें पूर्व्वोक्त मन्त्र द्वारा धूप-दीपादि उपहार द्वारा गङ्गापूजा कर प्रतिमाके आगे अक्षत और चन्दनसे निर्म्मित मेरी, तुम्हारी, ब्रह्माकी, सूर्य्यकी, हिमालयकी और भगीरथकी प्रतिमूर्त्तिकी पूजा करेंगी। अनन्तर, दश जन ब्राह्मणको सादर दशप्रस्थ तिल देंगी। पल, कुड़व, प्रस्थ, आढ़क और द्रोण यह सब परिमाण-पात्र, धान्यपरिमाणानुसारसे यह समस्त यथाक्रमसे (पहले पहलेसे) चारगुण बड़ा है। मत्स्य, कच्छप, मण्डूक, मकर, आदि जलचर जन्तु, हंस, कारण्डव, वक, चक्रवाक, टिट्टिभ और सारस पक्षी-सब, शक्ति-अनुसारसे सुवर्ण, रौप्य, ताम्र अथवा पिष्टकसे निर्म्माण करके वह समस्त गन्धपुष्पसे पूजा करके पूजक, गङ्गामें उसे निक्षेप करेंगी। वित्त-शाठ्यविवर्ज्जित होकर

यथाविधि इसी प्रकार उपवासी रहकर, वच्यमाण दशपापसे मुक्ति पाता है। अदत्तवस्तुका ग्रहण, अवैध हिंसा और परदारसेवा कायिक यही त्रिविध पाप हैं। परुषवचन, मिथ्या बोलना, सर्व्वप्रकार पैशुन्य और असम्बद्ध वाक्यप्रयोग, यह चतुर्व्विध वाचिक प्राप हैं। परद्रव्यके प्रति अभिधान, मनमें अनिष्ट चिन्ता, और असत्य वस्तुपर नितान्त आसक्ति, यह त्रिविध मानस प्राप हैं। हे गदाधर! दशजन्मार्ज्जित यह दशविध पापसे (इस कर्म्मफलसे) सत्य सत्य ही मुक्तिलाभ होता है, इसमें संशय नहीं। और (इस दशमी-कृत्य फलसे) दश पूर्व्वपुरुष और दश अधस्तन-पुरुष नरकोत्तीर्ण होते हैं। (पूजान्तमें) गङ्गाके निकट यह वच्यमाण स्तव पाठ करेंगे; "शिवा शिवदा गङ्गाको वारंबार नमस्कार, हे विष्णुरूपे! तुमको नमस्कार, हे ब्रह्मस्वरूपिणि! तुमको नमस्कार, हे रुद्ररूपिणि,! तुमको नमस्कार; शङ्करि! तुमको वारंबार नमस्कार है। हे सर्व्वदेवस्वरूपिणि! भवरोगकी औषधरूपे! तुमको नमस्कार। तुम सबके ही सब रोग वैद्यश्रेष्ठा हो; तुमको नमस्कार, हे चराचरविषविघातिनि! तुमको नमस्कार है। हे संसार-विषनाशिनि! जीवनरूपे! तुमको नमस्कार; तुम त्रितापहन्त्री, जीवनकी ईश्वरी हो, तुमको वारंबार नमस्कार है। हे शान्तिसमूहसम्पादनकारिणि! शुद्धरूपे! तुमको नमस्कार है; हे सर्व्वशुद्धिविधायिनि! तुम्हारी मूर्त्ति पापसमूहकी शत्रु है, तुमको नमस्कार है। तुम भोग-मोक्षप्रदायिनि! मङ्गलदात्री हो; तुमको वारंबार नमस्कार है। हे भोगवति! तुम भोगोपभोगदायिनि हो! तुमको नमस्कार! हे मन्दाकिनि! तुमको नमस्कार; हे स्वर्गदायिनि! तुमको वारंबार नमस्कार है। हे त्रैलोक्यभूषणस्वरूपे! तुमको नमस्कार; हे त्रिपथगे! तुमको वारंबार नमस्कार; हे त्रिशुक्लसंस्थे! हे क्षमावति! तुमको वारंबार नमस्कार; हे गार्हपत्य! दक्षिण और आहवनीय नामक अग्नित्रयकी अधिष्ठानदेवि! तेजोवति! तुमको वारंबार नमस्कार है। तुम नन्दा, तुम शिवलिङ्गधारिणी हो, तुम्हारा स्वरूप सुधाधारामय है, तुमको नमस्कार; तुम विश्वमुख्या, रेवती हो, तुमको वारंबार नमस्कार; हे बृहति! तुमको नमस्कार; हे लोकधात्री! तुमको नमस्कार है। हे विश्वमित्रे! तुमको नमस्कार; हे नन्दिनि! तुम्हें वारंबार नमस्कार है। हे पृ! हे पृथ्विशिवामृते! हे निर्म्मलसलिले! हे सुवृषे! (उत्तमधर्म्मरूपे) तुमको वारंबार नमस्कार है। तुम ब्रह्मादि परम देवगण और अस्मदादि अपर व्यक्तिवृन्द कर्तृक परिवृता हो, तुम तारा हो, तुमको वारंबार नमस्कार है। हे पाशजालच्छेदिनी! सर्व्वात्मिके! तुमको

नमस्कार, हे शान्त ! वरिष्ठे ! वरदे ! तुमको वारंबार नमस्कार है; हे उग्रे ! सुखभोगकारिणि ! सञ्जीविनि ! तुमको नमस्कार है । तुम ब्रह्मिष्ठा मुक्तिदायिनी और पापनाशिनी हो, तुमको नमस्कार है । हे प्रणतार्त्तिहारिणी ! जगन्मातः ! तमको नमस्कार है । हे मङ्गले ! तुम निखिल विपद्की शत्रु हो, तुमको वारंबार नमस्कार है । हे शरणागतदीनार्त्त-परित्राणकारिणि ! हे सबकी आर्त्तहारिणि ! नारायणि ! तुमको नमस्कार है ! हे निर्लिपे ! हे दुर्गहन्त्रि ! हे दक्षे ! हे निर्वाणदायिनी ! गङ्गे ! कार्य्य कारणस्वरूपा तुमको वारंवार नमस्कार है । गङ्गे ! तुम मेरे सामने रहो ; गङ्गे ! मेरे पीछे अवस्थान करो ; गङ्गे ! मेरी पार्श्ववर्त्तिनी हो ; गङ्गे ! तुममें मेरा स्थैर्य्य हो ; हे पृथिवीस्थिते ! शिवे ! आदिमें सगुणरूपसे, अन्तमें अवधि रूपसे और मध्यमें इस विश्वरूपसे अवस्थित हो, इसलिये तुम्हीं सब हो, तुम्हीं मूलप्रकृति, तुम्हीं परम पुरुष हो, हे गङ्गे । तुम्हीं परमात्मा शिव हो ; हे शिवे ! तुमको नमस्कार है । जो मनुष्य श्रद्धासे इस स्तवका पाठ करते, या श्रवण करते, वह, कायिक, वाचिक और मानसिक दशविध पापसे मुक्ति पाते हैं, रोगी रोगसे, विपन्न विपद्से, बद्ध बन्धनसे, भीत मनुष्य भयसे मुक्त होता है । (इस स्तवके पढ़ने सुननेके फलसे) उसकी सर्व्व कामना पूर्ण होती है और परकालमें वह मनुष्य दिव्य विमानारोहणसे दिव्य स्त्रीगण कर्त्तृक वीजित होकर स्वर्गमें गमन करता है । यह लिखित स्तोत्र जिसके घरमें रहता है, उनको भी अग्निभय, चोरभीति और सर्प्पादिभय कभी नहीं होता । ज्येष्ठमास, शुक्लपक्ष, हस्तानक्षत्रयुक्त दशमी बुधवार योगसे त्रिविध पाप हरण करता है । दरिद्र हों या अक्षम हों, जो मनुष्य, पूर्व्वोक्त विधानक्रमसे यत्नपूर्व्वक गङ्गापूजा करके दशमी तिथिमें गङ्गाजलमें अवस्थिति होकर दशबार इस स्तोत्रका पाठ करते, उन्हें भी पूर्व्वोक्त फल मिलता है । जैसी गौरी, वैसी ही गङ्गा, इस लिये गौरीपूजाकी जो विधि कीर्त्तित हुई है गङ्गापूजामें भी उसी विधिके अनुसार अनुष्ठान करना चाहिये । जैसा मैं, वैसे तुम, जैसे तुम, वैसी उमा, जैसी उमा, वैसी गङ्गा, इस चारस्वरूपमें कुछ भेद नहीं है । जो मनुष्य हरिहरमें भेद, लक्ष्मी-दुर्गामें भेद, अथवा गङ्गादुर्गामें भेद कीर्त्तन करते हैं, वह मूढ़ बुद्धि हैं ।

सप्तविंश अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥

अष्टाविंश अध्याय ।

गङ्गामहिमा ।

पार्व्वतीने कहा, "नाथ ! मैं आत्मसंशयापनोदनके लिये कुछ पूछनेकी इच्छा

रखती हूं। हे त्रिकालज्ञान-विचक्षण! यदि कष्ट न हो, तो कहिये—चक्रपुष्करिणीतटमें विष्णुने जब तपस्या की, तब भगीरथ राजा कहां थे और भागीरथी ही कहां थीं?" हे सततनिर्मले! विश्वाक्षि! इस विषयमें सन्देह न करो। श्रुतिस्मृति-पुराणमें भूत भविष्यत् वर्त्तमान त्रिकालकी बात कही जाती है। भविष्यत्में अतीतवत् है; वर्त्तमानमें भूतवत् व्यवहार भी होता है। अतएव व्यर्थ संशय मत करो। यह कहकर शिवने फिर गङ्गा माहात्म्य कहा था। अगस्त्यने कहा, हे पार्व्वतीनन्दन! उस समय देवादिदेवने हरिसे गङ्गामाहात्म्य जैसे कहा था, वह सम्पूर्णरूपसे कहिये स्कन्दने कहा, हे मुने! हे मैत्रावरुणि! देवदेवने पातकापह गङ्गामाहात्म्य जैसे कहा, वह सुनो। जो व्यक्ति, पितृगणको भव-सागरसे उद्धार करते हैं। गङ्गातटमें, मनुष्य पितृकार्य्यार्थ जितने तिल लेते हैं, पितृगण उतने ही सहस्र वर्षतक स्वर्गवासी होते हैं। गङ्गामें देवगण, पितृगण, सदा अवस्थित हैं; इसलिये ही वहां उन लोगोंका आवाहन और विसर्ज्जन नहीं है। पितृवंशके मृत व्यक्ति, मातृवंशके मृत व्यक्ति, गुरु, श्वशुर और बन्धुकुलके मृत व्यक्ति, मृत्यु प्राप्त और और बान्धव, बिना दांत उगे मरनेवाला, गर्भमृत, अग्निदाहमृत, विद्युत्पातहत, चौरनिहत, व्याघ्रनाशित, अन्यान्य दंष्ट्रि-निपातित, उद्बन्धनमृत, पतित, आत्मघाती, आत्मविक्रयी, चौर, अयाज्य-याजक, रसविक्रयी, पापरोगी, अग्निदाता (जो घरमें आग दें) विषदाता और गोघाती आदि अपने वंशसम्भूत व्यक्ति, और जो असिपत्रवन नरकमें निपतित हैं, कुम्भीपाक नरकमें अवस्थित हैं, रौरव, अन्धतामिस्र या कालसूत्र नरक प्राप्त, जो अपने कर्म्मानुसार कई सौ वर्ष घूमते रहे या जो असंख्य व्यक्तिगण, निर्द्दिष्ट पक्षी, मृग, कीट, वृक्ष, वीरुध प्रभृति जन्मप्राप्त हैं, जो अति निकृष्ट हैं, घोरतर यमकिङ्करगण जिन्हें यमलोक ले गये हैं, जिनके बान्धव नहीं या हैं, जो दूसरे जन्ममें बान्धव थे, जिनका नाम नहीं मालूम और अपुत्रक हैं, ऐसे सगोत्रसम्भूत व्यक्ति और विष-हत, शृङ्गिविनाशित, कृतघ्न, गुरुघ्न, मित्रद्रोही, स्त्रीघाती, बालघाती, विश्वासघाती, असत्यपरायण, हिंसानिरत, सदापापरत, अश्वविक्रयी, परद्रव्यापहारी, अनाथ, कृपण, दीनहीन और मनुष्यजन्म लाभमें असमर्थ व्यक्तिगण भी मनुष्यके केवल एकबार यथा-विधि गङ्गाजल द्वारा तर्पित होनेसे, स्वर्ग-लाभ करते हैं और स्वर्गवासिगण मुक्ति लाभ करते हैं। "पितृवंशे मृता ये च" इत्यादि मन्त्र उच्चारणकर जो व्यक्ति पितृ-तर्पण, श्राद्ध और पिण्डदान करते हैं, वह इस जगतमें विधिज्ञ कहे जाते हैं। त्रैलोक्यमें जितने कामप्रद तीर्थ हैं, वह सभी

काशीकी उत्तरवाहिणी गङ्गाकी सेवा करते हैं। गङ्गा सब जगह ही पावनी और ब्रह्महत्यादि-पापनाशिनी हैं; हे विष्णो! जहां वह उत्तरवाहिणी हैं, उस जगहमें विशेषतः हैं। देवगण, ऋषिगण और पितृगण यह यश गाते हैं, कि जिसमें काशीकी उत्तरवाहिणी गङ्गा हमारे नयन-पथवर्त्तिनी हों। जिसमें उत्तरवाहिणी गङ्गाजलसे सन्तप्त और त्रितापवर्ज्जित हो, विश्वनाथके प्रसादसे मुक्तिलाभ करें। हे हरे! ऐसा सब जगह निश्चय है, कि केवल गङ्गा ही मुक्तिदायिनी हैं; मेरे (शिवके) अधिष्ठानगौरवसे तो अविमुक्त क्षेत्रमें विशेष फल होता है। घोर कलि-युग जानकर गङ्गाभक्ति छिपाई गई है। एकमात्र मुक्तिपथप्रदर्शिनी गङ्गाको जनगण प्राप्त नहीं हो सकते। अनेक नियुत जन्म बहुयोनिमें भ्रमणशील कौन देही, गङ्गा-भक्तिके सिवा निर्व्वृतिको प्राप्त हो सकता है? हे विष्णो! पापविक्षिप्तचेताः संसार-रोगी अल्पबुद्धि मनुष्योंको गङ्गा ही परम औषध हैं। हे हरे! जो व्यक्ति गङ्गा-तीरके देवालय या टूटेफूटे घाटको मरम्मत करा देते हैं, मेरे लोकमें उनको अक्षय सुख मिलता है। जो व्यक्ति परार्थ या स्वार्थसे गङ्गा जानेका उद्देश करके फिर मोहप्रयुक्त हो न जायं, वह पितृगण सहित पतित होते हैं। हे हरे! जिन देहि-योंका सब काम गंगाजल द्वारा होता है, वह भूमितलमें मरनेपर भी देवता हैं। जो व्यक्ति बहुत पापसञ्चय करनेपर, चौथे-पनमें गङ्गासेवन करें, वह भी शुभ गतिको प्राप्त होते हैं। मनुष्योंकी अस्थि गङ्गा-जलमें जितने कालतक रहे, उतने सहस्र वर्ष, वह सादर स्वर्गलोकमें वास करते हैं। श्रीविष्णुने कहा, हे त्रिलोक-हित-कारिन्! देवदेव! प्रभो! जगत्पते! हे ईश्वर! यह कहिये, कि निर्म्मल गङ्गा-जलमें यदि अपमृत्युहत दुर्व्वृत्त दुरात्माकी अस्थि दैवात् पतित हो, तो उसकी परम गति होगी या नहीं? महादेवने कहा, हे अधोक्षज! इस विषयमें वाहीक ब्राह्मण सम्बन्धी इतिहास कहता हूं, एक चित्त हो सुनो। अगले समयमें कलिंग देशमें, वाहीक नामक, यज्ञसूत्रमात्रधारी लवणविक्रयी एक ब्राह्मण थे। उन्हें कुछ भी स्नान, सन्ध्या, वेदाचरका ज्ञान नहीं था। एक विधवा तन्तवाय-पत्नी उन वाहीकके गृहकी गृहिणी थी। नाथ! एकबार कलिङ्ग देशके अत्यन्त दुर्भिक्ष पीड़ित होनेपर, वह शूद्री जीवन-धारणका उपाय न पाकर पतिके साथ देशसे देशान्तर गई। क्षुधाकातर निःस-हाय वाहीक, दण्डकारण्यकी राहमें नर-मांसलोलुप बाघ द्वारा निहत हुए। एक गृध्र उनका बांया पैर लेकर उड़ा, मांसाशी दूसरे गृध्रसे और उससे आकाशमें युद्ध हुआ। आमिषाभिलाषी दोनो गृध्रके पर-

सर जयमें उद्यत होनेपर, पहले व्याघ्रके वज्रपुटसे बांयागुल्फ नीचे पतित हुआ। दोनो व्याघ्रोंके युद्ध करनेसे, व्याघ्रव्यापादित उन वाह्नीक विप्रका पादगुल्फ दैवयोगसे गङ्गामें ही पतित हुआ। यहां जिस समयसे अरण्यगत वाह्नीक विप्र, बाघ द्वारा निहत हुए, उसी समय वह, पापपाणि-यमकिङ्कर द्वारा बांधे गये। वाह्नीक, कसाताड़ित, मर्म्मभेदक आरास्त्र द्वारा सर्व्वाङ्गसे व्यथित हो मुखसे रुधिर वमन करते यमदूत द्वारा यमके समीप लाये गये। हे श्रीपते! फिर यमराजने चित्रगुप्तसे पूछा, "इस ब्राह्मणका धर्म्माधर्म्म विचारकर शीघ्र कहो।" फिर हे हरे! सब प्राणीके सब समयके सर्व्वकर्म्माभिज्ञ विचित्रबुद्धि चित्रगुप्त यमुनाभ्राता यमनके पूछनेपर दुर्वृत्त द्विज वाह्नीकके आजन्मका अशुभकर्म्म उनसे निवेदन करने लगे, पहले किसीने इसका गर्भाधान संस्कार कार्य्य नहीं किया; इसके अज्ञ पिताने गर्भपापशमनके लिये समस्त जीवनका सुखकर, जातकर्म्म भी नहीं किया; जिस नामकरण विधानसे बालक सर्व्वत्र विख्यात होता है, एकादश दिनको विधिपूर्व्वक इसका नामाकरण भी नहीं हुआ। इसके मन्दबुद्धि पिताने शुभ तिथि, शुभनक्षत्रादिकी विहितगमननिवारक विधिपूत निष्क्रामणसंस्कार भी चौथे महीनेमें नहीं किया। हे यमराज! जिस कामके प्रभावसे सदा मीठा भोजन करनेको मिलता है, छठें महीने वह अन्नप्राशन व्रत भी नहीं हुआ। जिस कामके करनेसे, केशचय सुस्निग्ध और कुसुमवर्षी होते हैं, वह चूड़ाकरण संस्कार भी कुलाचारानुसारी वर्षमें नहीं हुआ। जिसके द्वारा कर्णयुगल सुश्रवण सम्पादक और सुवर्णग्राही होते हैं, शुभ समयमें वह कर्णवेध कार्य्य भी इसके पिताने नहीं किया। हे विष्णुरूप यम! ब्रह्मचर्य्यकी वृद्धि और वेदग्रहणका हेतुभूत उपनयन संस्कार आठवां वर्ष बीतनेपर भी नहीं हुआ। जिस कामके करनेसे पर परमाश्रम गार्हस्थ्यमें प्रविष्ट किया जाता है, वह समावर्त्तन कार्य्य भी इसके पिताने नहीं किया। फिर कुलत्यागिनी अध्वचारिणी वृषलोके साथ किस तरह इस द्विजने विवाह किया। यह परदारापहारी वृषलीपति पांच वर्षसे आरम्भकर परस्वापहारी, दुराचार और द्युतक्रीड़ासक्त हुआ। इस द्विजने लवणखानिमें रहनेके समय एक दिन दृढ़दण्ड प्रहारसे एक वर्षकी गऊको मार डाला था, गऊ उसका लवण लेहन करती थी। इस व्यक्तिने कई बार माताको लात भी मारी है, पिताके वचनका पालन कभी नहीं किया! इस कलहप्रिय दुर्म्मतिने (आत्महत्याके अभिप्रायसे) कई बार विषभक्षण किया है, परायेको राजद्वारमें दण्डित करानेके लिये, आप ही आप अपना उदरविदारण किया है और, क्रीड़ा

कलह मात्रसे भी धुस्तर करीरादि उपविष्ट कई बार खाया है। हे सूर्य्यपुत्र! यह शिष्टनिन्दित दुष्ट पापिष्ठ (आत्मघातादिके लिये अपनी इच्छासे) अग्निदग्ध हुआ है, कुक्कुरभक्षित हुआ है, शृंगिगण द्वारा सींगके अगले भागसे कई जगह विदीर्ण हुआ है, कईबार सर्पों द्वारा डसा गया है, काष्ठ इष्टक और लोहे द्वारा भी इसने सदा सर्व्वदा अपना अनिष्ट साधन किया है। साधुगण, सदा जिस मस्तककी अर्च्चना करते हैं, इस दुरात्माने वारंवार उसी मस्तकको कूटा है। यह मन्द ब्राह्मण, गायत्री भी नहीं जानता; इस दुर्व्बुद्धिने इच्छासहित अकेले मत्स्य मांस खाया है। इस व्यक्तिने कई बार अपने लिये पायस पाक बनाया है। इस मूढ़ने सतत लाक्षा, लवण, मांस, दूध, दही, घृत, विष लोह, अस्त्र, दासी, गो, अश्व, केश और चमड़ा बेचा है। इस दुरात्माकी देह शूद्रान्नपुष्ट है; यह व्यक्ति, पर्व्व और दिनको मैथुन करता और देव पैत्र कर्म्मसे पराङ्मुख था। इस व्यक्तिने शताधिक मृगपक्षी बध किया है, अकारण वृक्षच्छेदन किया है, इसका चित्त बहुत निर्द्दय है। नित्य निजवस्तुमें भी उद्वेग उत्पादन करता, सदा झूठी बात, सदा हिंसा इसका काम था। इसने कभी दान नहीं किया, पिशुनता इसका धर्म्म था; शिश्न और उदर ही इसका सार था। हे सूर्य्यनन्दन! और क्या कहें, यह व्यक्ति साक्षात् पापमूर्त्ति है; रौरव, अन्धतामिस्र कुम्भीपाक, अतिरौरव, कालसूत्र, कृमिभक्ष, पूयशोणितकर्द्दम, घोरतर असिपत्रवन, यन्त्रपीड़, सुदंष्ट्र, अधोमुख, पूतिगन्ध, विष्ठागर्त्त, श्लेष्मभोजन, सूचीभेद्य, सन्दंश, लालाभक्ष और क्षुरधार इनमें प्रत्येक नरकमें एक कल्पतक इसको निपातित करिये। चित्रगुप्तसे यह सुनकर धर्म्मराजने उस दुराचार ब्राह्मणको भर्त्सनाकर भ्रूभङ्गीद्वारा किङ्करगणको बुलाया। तब किङ्कर लोग वाह्लीकको बांधकर, जिस जगह पापियोंका उच्च आर्त्तनाद होता था, उस लोमहर्षण नरकालयमें ले गये। ईश्वरने कहा, वाह्लीकके बहुत कड़ी यातनामें अवस्थित होनेपर, गृध्र मुखसे उस दुष्ट द्विजका पादगुल्फ तत्क्षण-पुण्य-फल-सम्पादक निर्म्मल गङ्गाजलमें पतित हुआ! हे हरे! उसी समय ही घण्टा, विलम्बित बहु-दिव्यरमणी-परिवृत विमान देवलोकसे आया। हे हरे! गङ्गामें अस्थिपतन प्रयुक्त द्विज वाह्लीकने दिव्य गन्धानुलिप्त और वेषधारी हो देवयानमें चढ़कर, अप्सरागणकी व्यजनवात भोग करते स्वर्गभवनकी ओर गमन किया। स्कन्दने कहा, हे कुम्भसम्भव! अनिर्व्वचनीय इस वस्तु शक्तिका अद्भुत विचार है। यह गङ्गा सदाशिवकी द्रवरूपिणी अनिर्व्वचनीया परमाशक्ति हैं। करुणामृतपूर्ण देवदेव प्रभु ने जगदुद्धारके लिये इन गङ्गाका प्रवर्त्तन किया है। जगतमें जो जलपूर्ण कितनी

ही सहस्र सहस्र नदियां हैं, सज्जनलोग त्रिपथगामिनी गङ्गाकी वैसी विवेचना न करें। हे मुने! गङ्गाधर शिवने दया करके दैवाद्वर निष्पीड़न हो, उनके द्रव्य द्वारा यह गङ्गा निर्म्माण की है। शङ्करने सब प्राणियोंके प्रति दया करके योगोपनिषद्का सार आकर्षणकर इन सरिद्वराका निर्म्माण किया है। जिन जिन देशोंमें गङ्गा नहीं हैं, वह सब देश, चन्द्रहीन रात्रि और पुष्पहीन वृक्षकी तरह है। हे हरे! गङ्गाप्रवाह-विहीन समस्त दिग्देश नीतिहीन सम्पत्ति और दक्षिणाहीन यज्ञकी तरह हैं। जिस जिस दिक्में गङ्गा नहीं हैं, वह सब सूर्य्यहीन गगनाङ्गन, रातमें दीपहीन गृह और वेदहीन ब्राह्मणकी तरह है। कोई व्यक्ति शरीरशोषक सहस्र चान्द्रायण करे और कोई व्यक्ति गङ्गाजल पान करे, तो उन दोनोंमें गङ्गाजलपानकर्त्ता ही श्रेष्ठ है। कोई व्यक्ति (तपस्यामें) शत सहस्र वर्ष एक पैरसे अवस्थित रहे, और कोई व्यक्ति एक वर्ष गङ्गाजल पान करे, इन दोनोंमें गङ्गाजलपानकर्त्ता ही श्रेष्ठ है। हे हरे! जो मनुष्य कई सौ वर्ष अधःशिरा हो लम्बमान रहे, उसकी अपेक्षा वह श्रेष्ठ है, जो गङ्गाकी बालूपर शयन करे। इस कलिकालमें जिस तरह जाह्नवी गङ्गा पापतापतप्त प्राणियोंका पापताप हरण करती हैं, वैसा और कोई नहीं कर सकता। गरुड़को देखनेसे ही जिस तरह फणिगण निर्व्विष होते हैं, उसी तरह गङ्गादर्शनमात्रसे ही पापराशि निष्प्रभ होती है। जो मनुष्य, गङ्गातीरसम्भूत मृत्तिका मस्तकपर धारण करते हैं, वह निश्चय ही तमोनाशके लिये सूर्य्यमण्डल धारण करते हैं। व्यसनाक्रान्त, दरिद्र और पापी व्यक्तिकी, केवल गङ्गा ही गति हैं, और किसी तरहसे कोई भी गति नहीं कही गई है। इस विषयमें संशय नहीं, कि माहात्म्य सुनने, स्नानादिमें एकान्त कामना, दर्शन, स्पर्श, जलपान और अवगाहन करनेसे गङ्गा, पुरुषके दोनो कुलका उद्धार करती हैं। गङ्गाका नाम-कीर्त्तन, दर्शन, स्पर्श, गङ्गाजलपान और अवगाहनसे पापहानि और दशगुण पुण्यसञ्चय होता है। गङ्गामें जानेसे, जो फल मिलता है, पुत्र धन और सत्कर्म्म प्रभृति दूसरे उपायसे वह फल नहीं प्राप्त होता। जो शक्ति रहते भी मुक्तिप्रसवनी गङ्गामें स्नान नहीं करता, वह जन्मान्ध, पङ्गु और जीवनमृत है। हे हरे! गङ्गामाहात्म्य प्रकाशिनी निश्चितार्थ प्रतिपादिका श्रुति सुनो। इस श्रुतिको सुननेसे मानवप्रधान, गङ्गा आश्रय करता है। उस श्रुतिका अर्थ यह है,—"लक्ष्मीप्रदायिनी मधुमती, पयस्विनी अमृतरूपा, ऊर्जस्वती स्वर्गसम्भूता गङ्गाका जो आश्रय करते हैं, वह स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त होते हैं। ऋषिसेविता अतिपुण्यप्रवाहिणी

पुरातनी विष्णुपदी जाह्नवीका जो सर्व्वान्तः-करणसे मन ही मन आश्रय करते, वह ब्रह्मलोक जाते हैं। माता जैसे पुत्रगणको सुखमें रखती हैं, उसी तरह इस समस्त लोकको सर्व्वगुणशालिनी गङ्गा स्वर्गसुख-भोगी करती हैं, इष्ट ब्रह्मलोक जानेके अभिलाषी व्यक्तिगण जितेन्द्रिय हो इन गङ्गाकी सेवा करें। आत्मशुद्धिकाम व्यक्ति, देवगण-सेविता कार्त्तिकेय जननी दूरावती (भूमिवाक्य और जो लक्ष्मी दान करती हैं) शिष्ट-सेव्या अमृतस्वरू-पिणी ब्रह्मकान्ता विश्वरूपा, गङ्गाका आश्रय करें।" मनुष्य, ब्रह्मचारी और एकाग्रचित्त हो गङ्गामें स्नान करनेसे निष्पाप होते हैं और वाजपेय यज्ञका फल लाभ करते हैं। गङ्गाके आश्रित होनेसे, वह उन व्यक्तिगणका भी सदा उद्धार करती हैं, जो अशुभ-कर्मग्रस्त, महासमुद्रमें भग्नप्राय और नरक पतनो-न्मुख हैं। जैसे ब्रह्मलोक, सब लोकसे उत्तम है, उसी तरह जाह्नवी समस्त सरित्सरोवरकी श्रेष्ठा हैं। और कहीं सम्यक् सङ्कल्प करके तीन वर्ष तपस्या कर-नेसे जो फल होता है, गङ्गामें भक्तिपूर्व्वक आधी घटि, करनेसे वह फल होता है। रातमें चन्द्रोदय होनेपर गङ्गातीरमें जो प्रीति होती है, अक्षयसुखभोगपरायण स्वर्गवासियोंको भी वह प्रीति नहीं होती। जरारोगयुक्त अपने उस देहको, धैर्य्यस-हित गङ्गाजलमें तृणवत् परित्याग करनेसे वह अमरावतीको जाता है। चन्द्रमण्डल जिनके जलसमूहसे प्लावित हो रातमें अत्य-धिक शोभासम्पन्न होता है, जिनके जलमें स्नान करनेसे, सद्यः पाप विनष्ट होता है और तत्क्षणात् महत् श्रेयःप्राप्ति होती है, हे अच्युत! उनका जल, वंशसम्भूत व्यक्ति-गणके श्रद्धासहित पितृगणको प्रदान कर-नेसे तीनवर्ष पितृगणको परम तृप्ति होती है, हे विष्णो! जो पृथिवीस्थित मर्त्त्यका, अधःस्थित सरीसृपका और स्वर्गमें स्वर्गवा-सियोंका निस्तार करती हैं, वह त्रिपथगा नामसे अभिहित हैं, वह तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ हैं, नदियोंमें उत्तमा नदी हैं। वह गङ्गा, सब प्राणिगणको ही नहीं, महापात-कियोंको भी स्वर्ग ले जाती हैं। हे विष्णो! स्वर्ग भूतल आकाश—सर्व्वत्र जो बहुकोटि तीर्थ हैं, वह सभी गङ्गामें अव-स्थित हैं। जो व्यक्ति आत्मघात न करके ज्ञानपूर्व्वक गङ्गामें पञ्चत्वको प्राप्त होते, वह स्वर्ग प्राप्त होते हैं, उन्हें फिर नरक देखना नहीं पड़ता। गङ्गा ही सब तीर्थ हैं, गङ्गा ही तपोवन और गंगा ही सिद्ध-क्षेत्र हैं, इस विषयमें विचार नहीं करना चाहिये। हे कुम्भसम्भव! जहां वृक्ष-राजि कामफलप्रसवी हैं, वह भूमि सुवर्ण-मयी है; गङ्गा नहानेवाले मनुष्य वहीं वास करें। जो मनुष्य सुशीला पयस्विनी सवत्सा धेनु, वस्त्ररत्नसे अलङ्कृतकर गङ्गा-

तीर्थमें ब्राह्मणको दान करते हैं, हे मुने! उस धेनु और उसके बछरेके शरीरमें जितने रोम हैं, उतने सहस्र वर्ष वह व्यक्ति स्वर्गसुख भोग करता है।

अष्टाविंश अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंश अध्याय।

गङ्गाके सहस्र नाम।

अगस्त्यने कहा, गङ्गास्नान व्यतीत मनुष्यका जन्म विफल है; तब जिससे गङ्गा-स्नानका फल मिलता है, इस प्रकारका उपायान्तर क्या है? अशक्त, पङ्गु और आलस्यग्रस्त, दूरदेशस्थ मनुष्यगणका गङ्गा स्नान क्योंकर होगा? हे षड़ानन! गङ्गास्नानका फल हो, ऐसा दान, व्रत, मन्त्र, स्तोत्र, जप, अन्य तीर्थमें स्नान और देवोपासनादि कर्म्मान्तर यदि कुछ है, तो वह प्रणामपरायण मुझसे कीर्त्तन कीजिये। हे महामते! गङ्गागर्भसम्भूत! स्कन्द! सुरतरङ्गिणीकी महिमा तुमसे अधिक और कोई नहीं जानता। श्रीस्कन्दने कहा, हे मुने! इस जगतमें पुण्य-सलिलसम्पन्न बहुत सरित् सरोवर हैं, जितेन्द्रियगणका अधिष्ठित, इष्टफलप्रद, महामहिमसम्पन्न तीर्थ सभी जगह हैं; किन्तु गङ्गाके कोटि भागके एक भागकी महिमा भी उन सबमें नहीं है। अधिक क्या कहूं, हे कुम्भयोने! इस अनुमानसे ही गङ्गाके माहात्म्यको जान लो, कि स्वयं देवदेव शम्भुने, इन गङ्गाको उत्तमाङ्गमें धारण किया। लोग स्नानके समय अन्यतीर्थमें गङ्गाका जप करते हैं। विष्णु-पदी गङ्गाके सिवा पापमोचनमें समर्थ और कोई क्या कहीं है? हे ब्रह्मन्! गङ्गास्नानका फल केवल गङ्गास्नानसे ही मिलता है; आङ्गुर फलका आस्वाद, आङ्गुरमें ही पाया जाता है; और किसीमें नहीं। हे मुने! तब एक ही उपाय है, जिससे अखिल गङ्गास्नानका फल होता है, किन्तु वह अतिशय गुह्यतम है। शिवभक्त, शान्त विष्णुभक्तिपरायण, श्रद्धालु, आस्तिक और गर्भवासमुमुक्षु मनुष्यसे यही महापातकनाशन परम रहस्य विषय कहा जायगा, अन्य मनुष्यके समीप कभी किसीपर भी प्रकाशित न होगा। उस रहस्यका विषय—स्तवराजशोभन, गङ्गाका सहस्र नाम है। इससे गङ्गाकी प्रीति उत्पन्न होती है, शिवका सन्तोष बढ़ता है। यह सहस्र नाम, जपगणमें परम जप्य, और यह वेद उपनिषद्के समान है। प्रयत्न पूर्व्वक मौनावलम्बनकर पवित्र स्थानमें सुस-ष्टाचरसे, पवित्रभावसे, बिना सहायताके यह सहस्र नामका जप करना होगा। "श्री गङ्गादेवीको नमस्कार, ओंकाररूपिणी अजया, अतुला अनन्ता, अमृतस्रवा, अत्यु-दारा, अभया, अशोका, अलकनन्दा, अमृता, अमला, अनाथवत्सला, अमोघा अपांयोनि,

अमृतप्रदा, अव्यक्तलक्षणा, अक्षोभ्या,
अनवच्छिन्ना, अपराजिता, अनाथनाथा,
अभीष्टार्थसिद्धिदा, अनङ्गवर्द्धिनी, अणिमादि-
गुणा, अधारा, अग्रगण्या, अलीकहारिणी,
अचिन्त्यशक्ति, अनघा, अतद्रूपा, अघ-
हारिणी, अद्रिराजसुता, अष्टाङ्गयोगसिद्धि-
प्रदा, अच्युता, अक्षुन्नशक्ति, असुदा, अनन्त-
तीर्था, अमृतोदका, अनन्तमहिमा, अपारा,
अनन्तसौख्यप्रदा, अन्नदा, अशेषदेवता-
मूर्त्ति, अघोरा, अमृतरूपिणी, अविद्याजाल-
शमनी, अप्रतर्क्य गतिप्रदा, अशेषविघ्न-
संहन्त्री, अशेषगुणगुम्फिता, अज्ञानतिमिर-
ज्योतिः, अनुग्रहपरायणा, अभिरामा,
अनवद्याङ्गी, अनन्तसारा, अकलङ्किनी,
आरोग्यदा, आनन्दवल्ली, आपन्नार्त्ति-
विनाशिनी, आश्चर्य्यमूर्त्ति, आयुष्या, आद्या.
आद्या, आप्रा, आर्य्यसेविता, आप्यायिनी,
आप्तविद्या, आख्या, आनन्दा, आश्वास-
दायिनी. आलस्यघ्नी आपदाहन्त्री, आनन्दा-
मृतवर्षिणी, इरावती, इष्टदात्री, इष्टा,
इष्टापूर्त्तफलप्रदा, इतिहासश्रुती, ज्यार्था,
इहामुत्रसुखप्रदा, इज्याशील-समि-ज्येष्ठा,
इन्द्रादिपरिवन्दिता, इलालङ्कारमाला,
इद्धा, इन्दिरारम्यमन्दिरा, इत्, इन्दिरादि-
संसेव्या, ईश्वरी, ईश्वरवल्लभ; ईतिभीति-
हरा, ईड्या, ईड़नीयचरित्रभृत्, उत्कृष्ट
शक्ति, उत्कृष्टा, उडुपमण्डलचारिणी, उदि-
ताम्बर मार्गा, उग्रा, उरगलोकविहा-
रिणी, उच्चा, उर्व्वरा, उत्पला, उत्कुम्भा,

(१००) उपेन्द्रचरणद्रवा, उदन्वत्, पुत्तिहेतु,
उदारा, उत्साहप्रवर्द्धिनी, उद्वेगघ्नी, उष्णा-
शमनी, उषाग्निसुताप्रिया, उत्पत्तिस्थिति-
संहारकारिणी, ऊर्ज्जं वहन्ती, ऊर्जधरा,
ऊर्ज्जावती, ऊर्म्मिमालिनी, ऊर्द्धरेताःप्रिया।
ऊर्द्धाध्वा उर्म्मिला, ऊर्द्धगतिप्रदा, ऋषिवृ-
न्दस्तुता, ऋद्धि, ऋणत्रयविनाशिनी ऋत-
म्भरा, ऋद्धिदात्री, ऋक्स्वरूपा ऋजुप्रिया,
ऋक्षमार्गवहा, ऋक्षार्च्चिः, ऋजुमार्गप्रद-
र्शिनी; एधिताखिलधर्म्मार्था, एका, एकामृत
दायिनी, धनीयस्वभावा, एज्या, एजिताशेष-
पातका, ऐश्वर्य्यदा, ऐश्वर्य्यरूपा ऐतिह्या,
ऐन्दवीद्युति, ओजास्विनी, ओषधिक्षेत्र,
ओजोदा, ओदनदायिनी, ओष्ठामृता,
औन्नत्यदात्री, औषध भवरोगिणां (सं-
सार रोगियोंको औषधस्वरूपा,) औदा-
र्य्यचुञ्चु, औपेन्द्री, औग्री, औमेयरूपिणी,
अम्बराध्ववहा, अम्बष्ठा, अम्बरमाला,
अम्बुजेक्षणा, अम्बिका, अम्बुमहायोनि,
अन्धोदा, अन्धकहारिणी अंशुमाला, अंशु-
मती, अङ्गीकृतषड़ानना, अन्धतामिस्रहन्त्री,
अन्धु, अञ्जना, अञ्जनावती, कल्याणकारिणी,
काम्या, कमलोत्पल गन्धिनी, कुमुद्वती, कम-
लिनी, कान्ति, कल्पितदायिनी, काञ्चनाक्षी,
कामधेनु, कीर्त्तिकृत, क्लेशनाशिनी, क्रतुश्रेष्ठा.
क्रतुफला, कर्म्मबन्धविभेदिनी, कमलाक्षी,
क्लमहरा, कृशानुतपनद्युति करुणार्द्रा,
कल्याणी, कलिकल्मषनाशिनी, कामरूपा,
क्रियाशक्ति, कमलोत्पलमालिनी, कूटस्था,

करुणा, कान्ता, कूर्म्मयाना, कलावती, कमला, कल्पलतिका, काली, कलुषवैरिणी, कमनीयजला, कम्रा कपर्द्दिसुकपर्द्दगा, कालकूटप्रशमिनी, (२००) कदम्ब कुसुमप्रिया, कालिन्दी, केलिललिता, कलकल्लोलमालिका, क्रान्तलोकत्रया, कण्डु, कण्डुतनयवत्सला, खड्गिनी, खड्गधाराभा, खगा, खण्डेन्दुधारिणी, खेखलगामिनी, खस्था, खण्डेन्दुतिलकप्रिया। खेचरी, खेचरीवन्द्या, ख्याति, ख्यातिप्रदायिनी, खण्डितप्रणताघौघा, खलबुद्धिविनाशिनी, खातैनःकन्दसन्दोहा, खड्गखट्वाङ्गखेटिनी, खरसन्तापशमनी, खनिःपीयूषपाथसां, (सुधाजलराशिखनिस्वरूपा) गङ्गा, गन्धवती, गौरी, गन्धर्व्वनगरप्रिया, गम्भीराङ्गी, गुणमयी, गतातङ्का, गतिप्रिया, गणनाथाम्बिका, गीता, गद्यपद्यपरिष्टुता, गान्धारी, गर्भशमनी, गतिभ्रष्टगतिप्रदा, गोमती, गुह्यविद्या, गौ, गोप्त्री, गगनगामिनी, गोत्रप्रवर्द्धिनी, गुण्या, गुणातीता, गुणाग्रणी, गुहाम्बिका, गिरिसुता, गोविन्दाङ्घ्रिसमुद्भवा, गुणनीयचरित्रा, गायत्री गिरिशप्रिया, गूढ़रूपा गुणवती, गुर्व्वी, गौरववर्द्धिनी, ग्रहपीड़ाहरा, गुन्द्रा, गरघ्नी, गानवत्सला, घर्म्महन्त्री घृतवती, घृततुष्टिप्रदायिनी घण्टारवप्रिया, घोराघौघविध्वंसकारिणी, घ्राणतुष्टिकरा, घोषा घनानन्दा, घनप्रिया, घातुका, घूर्णितजला, घृष्टपातकसन्तति, घटकोटिप्रपीतापा, घटिताशेषमङ्गला, घृणावती, घृणानिधि, घस्मरा, घुकनादिनी, घुसृणापिञ्जरतनु, घर्घरा, घर्घरस्वना, चन्द्रिका, चन्द्रकान्ताम्बु, चञ्चलापा, चलद्युति, चिन्मयी, चितिरूपा, चन्द्रायुतशतानना, चाम्पेयलोचना, चारु, चार्व्वङ्गी, चारुगामिनी, चार्य्या, चरित्रनिलया, चित्रकृत, चित्ररूपिणी, चम्पू, चन्दनशुचम्बु, चर्च्चनीया, चिरस्थिरा, (३००) चारुचम्पकमालाढ्या, चमिताशेषदुष्कृता, चिदाकाशवहाचिन्त्या, चञ्चच्चामरवीजिता, चोरिताशेषवृजिना, चरिताशेषमण्डला, छेदिताखिलपापौघा, छद्मघ्नी, छलहारिणी, छन्नत्रिविष्टपतला, छोटिताशेषबन्धना, छुरितामृतधारौघा, छिन्नैनाः, छन्दगामिनी, छत्रीकृतमरालौघा, छटीकृत निजामृता, जाह्नवी, ज्या, जगन्माता, जप्य, जङ्घालवीचिका, जया, जनार्द्दनप्रीता, जुषणीया, जगद्धिता, जीवन, जीवनप्राणा, जगज्ज्येष्ठा, जगन्मयी, जीवजीवातुलतिका, जन्मिजन्मनिर्व्वर्हिणी, जाड्यविध्वंसनकरी, जगद्योनि, जलाविला, जगदानन्दजननी, जलजा, जलजेक्षणा, जनलोचनपीयूषा, जटातटविहारिणी, जयन्ती, जप्जपूकघ्नी, जनितज्ञानविग्रहा, झल्लरीवाद्यकुशला, झलज्झलजलावृता, झिण्टीशवन्द्या, झङ्कारकारिणी, झर्झरावती, टीकिताखिलपताला, टङ्किकैनोद्रिपातने, (पापपर्व्वतविदारणटङ्करूपिणी) टङ्कारनृत्यत्कल्लोला,

टीकनीय महातटा, डम्बर-प्रवहा, डीनराज-
हंसकुलाकुला, डमड्डमरुहस्ता, डामरोक्त-
महाण्डका, ढौकिताशेषनिर्व्वाणा, ढक्कानाद-
चलज्जला, ढुण्ढिविघ्नेशजननी, ढण्ड-
ढनितपातका, तर्पणी, तीर्थतीर्था, त्रिपथा
त्रिदशेश्वरी, त्रिलोकगोप्त्री, तोयेशी,
त्रैलोक्यपरिवन्दिता, तापत्रितयसंहर्त्री,
तेजोबलविवर्द्धिनी, त्रिलक्ष्या, तारणी, तारा,
तारापतिकरार्च्चिता, त्रैलोक्यपावनीपुण्या
तुष्टिदा, तुष्टिरूपिणी, तृष्णाच्छेत्री, तीर्थ-
माता, त्रिविक्रमपदोद्भवा, तपोमयी तपो-
रूपा, तपस्तोमफलप्रदा, त्रैलोक्यव्यापिनी,
तृप्ति, तृप्तिकृत्, तत्त्वरूपिणी, त्रैलोक्यसुन्दरी,
तुर्य्या, तुर्य्यातीतपदप्रदा, त्रैलोक्यलक्ष्मी,
त्रिपदी, तथ्या, तिमिरचन्द्रिका, तेजोगर्भा,
तपःसारा, त्रिपुरारिशिरोगृहा, त्रयी-स्वरू-
पिणी, तन्वी, (४००) तपनाङ्गजभीतिनुत्,
तरि, तरणिजा-मित्र, तर्पिताशेषपूर्व्वजा,
तुलाविरहिता, तीव्रपापतूलतनूनपात्,
दारिद्र्यदमनी, दक्षा, दुष्प्रेक्ष्या, दिव्यम-
ण्डना, दीक्षावती दुरावाप्या, द्राक्षा-
मधुरवारिभृत्, दर्शितानेककुतुका, दुष्ट-
दुर्ज्जय-दुःखहृत्, दैन्यहृत्, दुरितघ्नी,
दानवारिपदाब्जजा, दन्दशूकविषघ्नी, दारिता-
घौघसन्तति, द्रुता, देवद्रुमच्छन्ना, दुर्व्वा-
राघविघातिनी, दमग्राह्या, देवमाता,
देवलोकप्रदर्शिनी, देवदेवप्रिया, देवी, दिक्-
पालपददायिनी, दीर्घायुष्कारिणी, दीर्घा,
दोग्ध्री, दूषणवर्ज्जिता, दुग्धाम्बुवा-
हिनी, दोह्या, दिव्या, दिव्यगतिप्रदा,
द्युनदी, दीनशरण, देहिदेहनिवा-
रिणी, द्राघीयसी, दाघहन्त्री, दितपातक-
सन्तति, दूरदेशान्तरचरी, दुर्गमा,
देववल्लभा, दुर्व्वृत्तघ्नी, दुर्व्विगाह्या,
दयाधारा, दयावती, दुरासदा, दान-
शीला, द्राविणी, द्रुहिणस्तुता, दैत्यदानव
संशुद्धिकर्त्री, दुर्व्वुद्धिहारिणी, दानसारा,
दयासारा, द्यावाभूमिविगाहिनी, दृष्टादृष्ट-
फलप्राप्ति, देवतावृन्दवन्दिता, दीर्घव्रता,
दीर्घदृष्टि, दीप्ततोया, दुरालभा, दण्डयित्री,
दण्डनीति, दुष्टदण्डधरार्च्चिता, दुरोदरघ्नी,
दावार्च्चिः, द्रव-द्रव्यैकशेवधि, दीनसन्ताप-
शमनी, दात्री, दवथुवैरिणी, दरी, विदार-
णपरा, दान्ता, दान्तजनप्रिया, दारिताद्रि
तटा, दुर्गा, दुर्गारण्यप्रचारिणी, धर्म्मद्रवा,
धर्म्मधुरा, धेनु, धीरा, धृति, ध्रुवा, धेनुदान-
फलस्पर्शा, धर्म्मकामार्थमोक्षदा, धर्म्मोर्म्मि-
वाहिणी, धूर्य्या, धात्री, धात्रीविभूषण,
धर्म्मिणी, धर्म्मशीला, धन्विकोटि, कृतावना,
ध्यातृपापहरा, ध्येया, धावनी, धूतकल्मषा,
(५००) धर्म्मधारा, धर्म्मसारा, धनदा,
धनवर्द्धिनी, धर्म्माधर्म्मगुणच्छेत्री, धुस्तूर-
कुसुमप्रिया, धर्म्मेशी, धर्म्मशास्त्रज्ञा, धनधान्य-
समृद्धिकृत्, धर्म्मलभ्या, धर्म्मजला, धर्म्मप्र-
सवधर्म्मिणी, ध्यानगम्य-स्वरूपा, धरणी,
धातृपूजिता, धूः, धूर्ज्जटिजटा-संस्था, धन्या,
धीः, धारणावती, नन्दा, निर्व्वाण-जननी,
नन्दिनी, नुन्नपातका, निषिद्धविघ्ननिचया,

निजानन्दप्रकाशिनी, नभोङ्गनचरी, नुति,
नम्या नारायणी नुता निर्म्मला, निर्म्मल-
ख्याना, नाशिनी, ताप सम्पदां, (तापसमूह-
नाशिनी,) नियता, नित्यसुखदा, नानाश्चर्य्य-
महानिधि, नदीनदसरोमाता, नायिका,
नाकदीर्घिका, नष्टोद्धरणधीरा, नन्दना,
नन्ददायिनी, निर्णिक्ताशेषभुवना, निःसङ्गा,
निरुपद्रवा, निरालम्बा, निष्प्रपञ्चा, निर्ना-
शितमहामला, निर्म्मलज्ञानजननी, निःशेष-
प्राणितापहृत्, नित्योत्सवा, नित्यतृप्ता, नम-
स्कार्य्या, निरञ्जना, निष्ठावती, निरातङ्का,
निर्लेपा, निश्चलात्मिका, निरवद्या, निरीहा,
नीललोहित-मूर्द्धगा, नन्दि भृङ्गिगणस्तुत्या,
नागानन्दा, नगात्मजा, निष्प्रत्यूहा, नाक-
नदी, निरयार्णवदीर्घनौ, पुण्यप्रदा, पुण्य-
गर्भा, पुण्या, पुण्यतरङ्गिणी, पृथु, पृथुफला,
पूर्णा, प्रणतार्त्तिप्रभञ्जिनी, प्राणदा, प्राणि-
जननी, प्राणेशी, प्राणरूपिणी, पद्मालया,
पराशक्ति, पुरजित्-परमप्रिया, परा,
(सर्व्वोत्कृष्टा) परफलप्राप्ति, पावनी,
पयस्विनी, परानन्दा, प्रकृष्टार्था, प्रतिष्ठा,
पालनी, परा, (पूरणकर्त्री) पुराण-
पठिता, प्रीता, प्रणवाक्षररूपिणी, पार्व्वती,
प्रेमसम्पन्ना, पशुपाशविमोचिनी, (६००)
परमात्मस्वरूपा, परब्रह्मप्रकाशिनी, पर-
मानन्दनिष्पन्दा, प्रायश्चित्तस्वरूपिणी,
पानीयरूपनिर्व्वाणा, परित्राण-परायणा,
पापेन्धन-दवज्वाला, पापारि, पापनाम-
नुत्, परमैश्वर्य्यजननी प्रज्ञा, प्राज्ञा, परा-
वरा, प्रत्यक्षलक्ष्मी, पद्माक्षी, परव्योमामृत-
स्रवा, प्रसन्नरूपा प्रणिधि, पूता, प्रत्यक्ष-
देवता, पिनाकि-परमप्रीता, परमेष्ठिकम-
ण्डलु, पद्मनाभपदार्घ्येण प्रसूता (विष्णु-
पादार्घ्य से उत्पन्ना) पद्ममालिनि, पर-
र्द्धिदा, पुष्टिकरी, पथ्या, पूर्त्ति, प्रभावती,
पुनाना, पीतगर्भघ्नी; पापपर्व्वतनाशिनी,
फलिनी, फलहस्ता, फुल्लाम्बुजविलोचना,
फलितैनोमहावेशा, फणिलोकविभूषणा, फेन-
च्छल-प्रणुन्नैनाः, फुल्ल-कैरवगन्धिनी, फेनि-
लाच्छाम्बुधाराभा, फुडुच्चाटितपातका,
फाणितस्वादुसलिला, फाण्टपथ्यजलाविला,
विश्वमाता, विश्वेशी, विश्वा; विश्वेश्वर-
प्रिया, ब्रह्मण्या, ब्रह्मकृत्, ब्राह्मी, ब्रह्मिष्ठा,
विमलोदका; विभावरी; विरजाः; विक्रा-
न्तानेकविष्टपा; विश्वामित्र; विष्णुपदी;
वैष्णवी, वैष्णवप्रिया; विरूपाक्षप्रियकरी;
विभूति; विश्वतोमुखी; विपाशा, वैबुधी;
वेद्या, वेदाक्षर-रसस्रवा, विद्या, वेगवती,
वन्द्या, वृंहणी, ब्रह्मवादिनी, वरदा, विप्र-
कृष्टा, वरिष्ठा, विशोधिनी, विद्याधरी,
विशोका, वयोवृन्दनिषेविता, बहूदका,
बलवती, व्योमस्था, विबुधप्रिया, वाणी,
वेदवती, वित्ता ब्रह्मविद्यातरङ्गिणी, ब्रह्मा-
ण्डकोटिव्याप्ताम्बु, ब्रह्महत्यापहारिणी,
ब्रह्मेशविष्णुरूपा, बुद्धि, विभववर्द्धिनी,
विलासिसुखदा, वैश्या, व्यापिनी, वृषारणि,
वृषाङ्कमौलिनिलया, विपन्नार्त्ति-प्रभञ्जिनी,
विनीता, विनता, ब्रध्नतनया, (७००)

विनयान्विता, विपञ्ची, वाद्यकुशला, वेणु-
श्रुति-विचक्षणा, वर्च्चस्करी, बलकरी, बलो-
न्मूलितकल्मषा, विपाश्या, विगतातङ्का,
विकल्प-परिवर्ज्जिता, वृष्टिकर्त्री, वृष्टिजला,
विधि, विच्छिन्नबन्धना, व्रतरूपा, वित्तरूपा,
बहुविघ्नविनाशकृत्, वसुधारा, वसुमती,
विचित्राङ्गी, विभावसु, विजया, विश्ववीज,
वामदेवी, वरप्रदा, वृषाश्रिता, विषघ्नी,
विज्ञानोर्म्मिंश्च शुमालिनी, भव्या, भोगवती,
भद्रा, भवानी, भूतभाविनी, भूतधात्री, भय-
हरा, भक्तदारिद्र्य-घातिनी, भक्तिमुक्तिप्रदा,
भेशी, भक्तस्वर्गापवर्गदा, भागीरथी, भानु-
मती, भाग्य, भोगवती, भृति, भवप्रिया,
भवद्वेष्ट्री, भूतिदा, भूतिदक्षिणा, भाल-
लोचनभावज्ञा, भूत-भव्य-भवत्-प्रभु, भ्रान्ति-
ज्ञान-प्रशमनी, भिन्नब्रह्माण्डमण्डलया; भूरिदा
भक्तिसुलभा; भाग्यवद्दृष्टिगोचरा, भञ्जितोप-
प्लवकुला; भक्ष्यभोज्यसुखप्रदा, भिक्षणीया;
भिक्षुमाता, भावा, भावस्वरूपिणी, मन्दा-
किनी, महानन्दा, माता, मुक्तितरङ्गिणी,
महोदया, मधुमती, महापुण्या, मुदाकरी,
मुनिस्तुता, मोहहन्त्री, महातीर्था, मधुस्रवा,
माधवी, मानिनी, मान्या, मनोरथ-पथातिगा,
मोक्षदा, मतिदा, मुख्या, महाभाग्यजना-
श्रिता, महावेगवती, मेध्या, महा (पूज्या),
महिमभूषणा, महाप्रभावा, महती, मीनच-
ञ्चललोचना, महाकारुण्य-सम्पूर्णा, महर्द्धि,
महोत्पला, मूर्त्तिमन्मुक्ति-रमणी, मणि-
माणिक्यभूषणा, मुक्ताकलापनेपथ्या, मनोम

यननन्दिनी, महापातकराशिघ्नी, महादि-
वार्त्तहारिणी, महोर्म्मिमालिनी, मुक्ता, महा-
देवी, (८००) मनोन्मनी, महापुण्योदय-
प्राप्या, मायातिमिरचन्द्रिका, महाविद्या,
महामाया, महामेधा, महौषध, मालाधरी,
महोपाया, महोरग-विभूषणा, महामोह-
प्रशमनी, महा (उत्सवमयी), मङ्गल-
मङ्गल, मार्त्तण्ड-मण्डलचरी, महालक्ष्मी,
मदोज्झिता, यशस्विनी, यशोदा, योग्या, यु-
क्तात्म-सेविता, योगसिद्धिप्रदा, याज्या, यज्ञेश
परिपूजिता, यज्ञेशी, यज्ञफलदा, यजनीया,
यशस्करी, यमिसेव्या, योगयोनि योगिनी,
युक्तबुद्धिदा, योगज्ञानप्रदा, युक्ता, यमद्य-
ष्टाङ्गयोगयुक्, यन्त्रिताघौघसञ्चारा, यमलोक-
निवारिणी, यातायातप्रशमनी, यातना-
नामकृन्तनी, यामिनीशहिमाच्छोदा, युग-
धर्म्मविवर्ज्जिता, रेवती, रतिकृत्, रम्या,
रत्नगर्भा, रमा, (लक्ष्मीरूपा) रति,
रत्नाकरप्रेमपात्र, रसज्ञा, रसरूपिणी,
रत्नप्रासादगर्भा, रमणीयतरङ्गिणी, र-
त्नार्च्चिः, रुद्ररमणी, रागद्वेषविनाशिनी
रमा, (नयनमनोभिरामा) रामा, रम्य-
रूपा, रोगिजीवातुरूपिणी, रुचिकृत्,
रोचनी, रम्या, (लक्ष्मीहितकरी,) रुचिरा,
रोगहारिणी, राजहंसा, रत्नवती, राजत्-
कल्लोलराजिका, रामणीयकरेखा, रुजारि,
रोगशोषिणी, राका, रङ्कार्त्तिशमनी, रम्या
(रमणीया), रोलम्बराविणी, रागिणी,
रञ्जितशिवा, रूपलावण्यशेवधि, लोक-

प्रसू, लोकबन्धा, लोलत्कल्लोलमालिनी, लीलावती, लोकभूमि, लोकलोचनचन्द्रिका, लेखस्रवन्ती, लटभा, लघुवेगा, लघुत्वहृत्, लास्यत्तरङ्गहस्ता, ललिता, लयभङ्गिका, लोकबन्धु, लोकधात्री, लोकोत्तरगुणोर्ज्जिता, लोकत्रयहिता, लोका, लक्ष्मी, लक्षणलक्षिता, लीला, लक्षितनिर्व्वाणा, लावण्या, अमृतवर्षिणी, वैश्वानरी (९००) वासवेड्या, वन्ध्यात्वपरिहारिणी, वासदेवाङ्घ्रिरेणुघ्नी, वज्रिवज्रनिवारिणी, शुभावती, शुभफला, शान्ति, शान्तनु-वल्लभा, शूलिनी, शैशववयाः, शीतलामृतवाहिनी, शोभावती, शीलवती, शोषिताशेषकिल्बिषा, शरण्या, शिवदा, शिष्टा, शरजन्मप्रसू, शिवा, शक्ति, शशाङ्कविमला, शमनस्वसृसम्मता, शमा, शमनमार्गघ्नी, शितिकण्ठमहाप्रिया, शुचि, शुचिकरी, शेषा, शेषशायिपदोद्भवा, श्रीनिवासश्रुति, श्रद्धा, श्रीमती, श्री, शुभव्रता, शुद्धविद्या, शुभावर्त्ता, श्रुतानन्दा, श्रुतिस्तुति, शिवेतरघ्नी, शबरी, शाम्बरीरूपधारिणी, श्मशानशोधनी, शान्ता, शश्वत, शतधृतिस्तुता, शालिनी, शालि, शुभाढ्या, शिखिवाहनगर्भभृत, शंसनीयचरित्रा, शातिताशेषपातका, षड्गुणैश्वर्य्यसम्पन्ना, षडङ्गश्रुतिरूपिणी, षण्डता-हारि-सलिला, स्त्यायन्नदनदीशता, सरिद्वरा, सुरसा, सुप्रभा, सुरदीर्घिका, स्वःसिन्धु, सर्व्वदुःखघ्नी, सर्व्वव्याधिमहौषध, सेव्या, सिद्धि, सती, सूक्ति, स्कन्दसू, सरस्वती, सम्पत्तरङ्गणी, स्तुत्या, स्थाणुमौलिकृतासदा, स्थैर्य्यदा, सुभगा, सौख्या, स्त्रीषु, सौभाग्यदायिनी (जो स्त्रियोंके प्रति सौभाग्यदानशीला है), स्वर्गनिःश्रेणिका, सूक्ष्मा, स्वधा, स्वाहा, सुधाजला, समुद्ररूपिणी, स्वर्ग्या, सर्व्वपातकवैरिणी, स्मृताघहारिणी, सीता, संसाराब्धितरण्डिका, सौभाग्यसुन्दरी, सन्ध्या, सर्व्वसारसमन्विता, हरप्रिया, हृषीकेशी, हंसरूपा, हिरण्मयी, हृताघसंघा, हितकृत्, हेला, हेलाघगर्व्वहृत्, क्षेमदा, क्षालिताघौघा, क्षुद्रविद्रावणी एवं क्षमा (१०००) हे कुम्भयोने! यह गङ्गा सहस्रनाम कीर्त्तन करनेसे मनुष्यको गङ्गास्नानका सम्यक् फल प्राप्त होता है। यह सहस्र नाम सर्व्वपापविनाशक, सर्व्वविघ्नविनाशक, सर्व्वस्तोत्रजपकी अपेक्षा इस स्तोत्रका जप श्रेष्ठ और सर्व्वविध पावन वस्तुका पवित्रतासम्पादक है। हे मुने! इसके श्रद्धासहित पाठ करनेसे, दृष्टसिद्धि होती और चतुर्व्वर्गप्राप्ति होती है। एकबार इस स्तोत्रका जप करनेसे एक यज्ञका फल प्राप्त होता है। जो व्यक्ति सर्व्वतीर्थके स्नात, सर्व्वयज्ञके अनुष्ठाता हैं, उनका जो फल निर्द्दिष्ट है, त्रिसन्ध्या, इस स्तोत्रके पाठसे वही फल होता है। हे ब्रह्मन्! निखिल व्रत सम्पूर्णरूपसे आचरण करनेपर जो पुण्य होता है, संयतभावसे त्रिसन्ध्या यह स्तोत्र पढ़नेसे, वही फल प्राप्त होता है। हे मुने! चाहे किसी जलाशयमें स्नान करनेके समय जो व्यक्ति यह स्तव पढ़ेंगे, विपथ-

गामिनी गङ्गा निश्चय वहां सन्निहिता होंगी। एक वर्ष श्रद्धासहित शुद्धचित्तसे त्रिकाल यह स्तव पढ़नेसे मङ्गलार्थी व्यक्ति मङ्गल प्राप्त करते, धनार्थी धन प्राप्त करते, कामनासम्पन्न पुरुष, काम्यवस्तु प्राप्त करते और मोक्षाभिलाषी व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करते और अपुत्र व्यक्ति, पुत्रकामनासे ऋतुकालमें पत्नीसे उपगत हो, पुत्र लाभ करेंगे। हे मुने! जो व्यक्ति गङ्गा सहस्र नाम जप करते हैं, उनको अकालमृत्यु नहीं होती, अग्नि, चोर और सर्पका डर नहीं रहता। गङ्गा सहस्र नाम जपकर ग्रामान्तरमें जानेसे, वहां उसका काम सिद्ध होता और निर्व्विघ्न फिर घरको लौट आता है। मनुष्य जिस समय इस स्तोत्रका पाठकर ग्रामान्तरमें जाता है, उसी समय, बार, नक्षत्र और योगकी दुष्टता क्षमताहीन होती है। यह गङ्गासहस्र नाम पुरुषके लिये आयुष्कर, आरोग्यकर, सर्व्वोपद्रव-विनाशक और सर्व्वसिद्धिकर है। सहस्र-जन्मान्तरसे जो पाप सम्पूर्णरूपसे उपार्ज्जित है, वह समस्त ही गङ्गा सहस्र नाम जपसे क्षयको प्राप्त होता है। हे मुने! ब्रह्मघाती, मद्यप, सुवर्णचोर, गुरुपत्नीगामी इन चतुर्व्विध पापीका संसर्गी, भ्रूणघाती, मातृघाती, पितृघाती, विश्वासघाती, विषप्रयोक्ता, कृतघ्न, मित्रघाती, अग्निदायी, गो-हत्याकारी, गुरुद्रव्यापहारी इत्यादि व्यक्ति महापातकयुक्त हो क्यों न हों, या उपपातकयुक्त ही क्यों न हों, श्रद्धापूर्व्वक इन गङ्गाके सहस्र नाम जप करनेसे, उन पापोंसे मुक्ति पावेंगे। आधिव्याधि-प्रपीड़ित, घोरतापग्रस्त व्यक्ति भी इस स्तव-कीर्त्तनफलसे समग्र दुःखसे मुक्ति लाभ करते हैं, एकाग्रचेताः और भक्तिपरायण हो संवत्सरतक इस स्तवका पाठ करनेसे अभिलषित सिद्धिप्राप्ति और सर्व्वपापमुक्त होता है। और संशयाविष्टचित्त, धर्म्मद्वेषी, हिंस्र, दाम्भिक व्यक्तिका चित्त भी धर्म्मपरायण होता है। कामक्रोधविवर्ज्जित ज्ञानीको जो फल होता है, वर्णाश्रमाचारनिरत व्यक्तिके यह स्तव पाठ करनेसे, वही फल प्राप्त होता है। अयुत गायत्रीजपसे जो फल होता है, एकबार सम्यक्रूपसे इस स्तवके पढ़नेसे वह फल सम्पूर्ण प्राप्त होता है। वेदज्ञ व्यक्तिको गोदान देनेसे, व्रतीको जो फल होता है, इस स्तवराजके एकबार पाठसे वह पुण्य सम्पूर्ण प्राप्त होता है, ऐसा कहा गया है। नरश्रेष्ठ यावज्जीवन गुरुशुश्रुषाकर जो पुण्य उपार्ज्जन करते, एक वर्ष त्रिकाल इस स्तवका पाठ करनेसे, वह पुण्य प्राप्त होता है, वेदपरायणके लिये जो पुण्य शास्त्रमें कहा गया है, छः महीने त्रिसन्ध्या इस स्तवके पाठसे वह फल प्राप्त होता है। नित्य इस गङ्गास्तवके अनुशीलन करनेसे शिवभक्ति अथवा विष्णुभक्ति लाभ होती है। जो मनुष्य रोज गङ्गा सहस्र नामका

पाठ करेंगे, गङ्गादेवी सदा उनके पास सहचरी होकर रहेंगी। इन जाह्नवीके स्तव पाठसे, मनुष्य सर्व्वत्र पूज्य, सर्व्वत्र विजयी और सर्व्वत्र सुखभोगी होता है। जो व्यक्ति इस स्तवका कीर्त्तन करते हैं, उन्हें सदाचारी, सदा पवित्र और सब देवताओंका पूजक जानना चाहिये। वह मनुष्योंके तृप्ति साधन करनेपर गङ्गा-तृप्तिलाभ करते हैं, इसमें संशय नहीं। अतएव सब प्रयत्नोंसे गङ्गाभक्तकी अर्चना करेंगे। जो मनुष्य यह गङ्गास्तवराज पढ़ें या सुनें, अथवा लोभदम्भविवर्ज्जित हो गङ्गाभक्तोंको सुनावें, वह मानसिक, वाचिक और कायिक इन तीन पापोंसे क्षणमें मुक्तिलाभकर निष्पाप हो, पितृगणको प्रिय होंगे। सब देवताओंके प्रीतिभाजन होते और ऋषियोंके प्रीति-पात्र होते हैं और वह व्यक्ति दिव्यविमानमें आरूढ़ हो दिव्य-स्त्रीशत-परिवृत, दिव्या-भरणसम्पन्न और दिव्यभोगान्वित हो नन्दन प्रभृति बनमें स्वच्छन्दसे, प्रकृत देव-ताकी तरह आमोद करते हैं। विशेषतः श्राद्धकालमें, पात्रीय ब्राह्मण-भोजनके समय, पितृतृप्तिकर इस महास्तोत्रका जप करनेसे, पात्रपर जितने अन्नकणा हैं, जितने जलकणा हैं, उतने वर्ष पितृगण, स्वर्गमें आमोद करते हैं। पितृगण गङ्गामें पिण्ड-दान करनेसे जितने प्रसन्न होते हैं, श्राद्धमें इस स्तवको सुननेसे उतनी ही तृप्ति लाभ करते हैं। यह स्तोत्र जिसके घरमें लिख कर पूजा जाता है, उसके घरमें पापका भय नहीं रहता और वह गृह सदा पवित्र रहता है। अगस्त्य! अधिक क्या कहूं! मेरी यह निश्चित बात सुनो, इस विषयमें संशय करनेका कर्त्तव्य नहीं है; क्योंकि सन्देहयुक्त व्यक्तिको फल नहीं होता। पृथिवीमें जितने और मन्त्रसमूह हैं, वह सभी गङ्गास्तव-राजके समान नहीं हैं। जो व्यक्ति इस सहस्र नामका याव-ज्जीवन पाठ करेंगे, वह मगधदेशमें मर-नेपर भी फिर गर्भवास नहीं करेंगे। जो मनुष्य नियमयुक्त हो, नित्य इस स्तोत्रका पाठ करेंगे, उसकी मृत्यु अन्यत्र होनेपर भी गङ्गातीरकी मृत्युके समान ही होगी। पूर्व्वकालमें शिवने निजभक्त विष्णुसे, इस रमणीय स्तवराजको कहा था; इस स्तवका एक एक अक्षर मुक्तिका हेतु है। गङ्गास्नानके प्रतिनिधि मैंने इस स्तोत्रका कीर्त्तन किया, अतएव गङ्गास्नानमें अभिलाषी सुधी व्यक्ति इस स्तोत्रका जप करेंगे।

एकोनत्रिंश अध्याय समाप्त॥ २९॥

त्रिंश अध्याय।

वाराणसी रहस्य।

स्कन्दने कहा,—हे महाभाग अगस्त्य! सुनो; राजर्षि-सत्तम राजा भगीरथ,

ब्राह्मण-आपानलसे दग्ध अपने पितृपुरुषगणकी उद्धारवासनासे महादेवकी आराधनाकर कठोर तपःप्रभावसे मर्त्त्यलोकमें गङ्गा ले गये। फिर वह त्रिभुवनके परम हितके लिये जहां मणिकर्णिका अवस्थित है, वहां उन्हें ले आये। जहां निर्व्वाण-पदप्रकाशन हेतु काशी नाम्नी नगरी प्रथित थी, दिलीपनन्दन भगीरथ अग्रसर हो अवलीलाक्रमसे मुक्तिप्रद विष्णुकी चक्रपुष्करिणी, परब्रह्मस्वरूप देवदेवके उस क्षेत्रप्रधान आनन्दकाननमें उन गङ्गादेवीको ले गये। हे मुने! सदा शिवके सान्निध्य वशतः वह अविमुक्तक्षेत्र पहले हीसे अमूल्य था, अब भागीरथीके सम्पर्कसे मणि काञ्चन दोनोंकी तरह समधिक मूल्यवान हुआ। चक्रपुष्करिणी तीर्थ पहलेसे ही मुक्तिक्षेत्र था सही, किन्तु महादेवके मणिमय कर्णभूषणयोगसे अपेक्षाकृत श्रेष्ठ हुआ। शिवाश्रित आनन्दकानन इस अविमुक्त क्षेत्रमें मुक्ति पहलेसे सिद्ध होनेपर भी गङ्गा सम्पर्कसे स्थिर सिद्ध हुई। मणिकर्णिकामें गङ्गाके समागम अवधिसे ही सिद्धक्षेत्र देवदुर्लभ हुआ। जीव, तरह तरहके पाप पुण्य कर्म्मकर काशीमें देहत्याग करनेसे क्षणकालमें कर्म्मबन्धन उच्छेदकर मोक्ष प्राप्त होता है। इसमें वेदान्तवेद्य ब्राह्मणका निदिध्यासन, साङ्ख्ययोग या कर्म्मपाशोच्छेदी तत्त्वज्ञानका प्रयोजन नहीं है, काशीमें मरनेसे ही नरगण, भगवान् शशिशेखरके प्रसादसे मुक्तिलाभमें समर्थ होते हैं। हे कुम्भयोने! यत्नसे हो या अयत्नसे, काशीमें कलेवर त्यागकर पानेसे तारकब्रह्म नामक उपदेश दे भगवान् उसे मुक्ति प्रदान करते हैं। बहुत जन्मसिद्धिका मूलीभूत प्राक्तन पुण्यराशिमें बद्ध जीव भेदज्ञानसत्त्वसे भी काशीमें जीवन त्याग करनेसे मुक्तिलाभ करं सकता है। इस काशीक्षेत्रमें देहत्याग ही तपस्या, दान और निर्व्वाण मुक्तिदायी परम योगस्वरूप कहा गया है। अति पातकी भी काशीकी उत्तर-वाहिणी गङ्गा प्राप्त हो बहानेसे देह त्याग करनेसे विष्णुका परम पद पाते हैं। पूर्व्वकालमें इन्द्र और वह्नि प्रभृति अमरगणने सबको ही मुक्तिमार्गोन्मुख देख इस तरह पुरीकी रक्षा विधान किया। उनलोगोंने पापियोंकी दुर्म्मतिदलनी दुष्टप्रवेशनिवारणी महासिद्धरूपिणी असिनदी और क्षेत्रविघ्ननाशिनी दुर्व्वृत्तगणकी कुप्रवृत्तिरोधिनी वरणानदीको निर्म्माणकर काशीक्षेत्रके दक्षिण और उत्तर भागमें स्थापन किया। देवगणने इस उपायसे क्षेत्रकी मुक्तिदानकी रक्षाकर निर्व्वृत्ति लाभ किया। भगवान् चन्द्रमौलिने स्वयं काशीक्षेत्रके पश्चाद्भागकी रक्षा करनेके लिये देहलीगणपतिको आदेश दिया। कृपापूर्व्वक स्वयं विश्वनाथ जिन लोगोंकी आनेकी अनुमति दान करते, उनको ही (असि, वरणानदी और देहली-

गणपति) काशीक्षेत्रमें प्रवेश करने देते। इस विषयमें काशीके प्रति भक्तिवर्द्धक, अति विस्मयावह एक प्राचीन इतिहास है; कहता हूं, सुनो। स्कन्दने कहा,—हे कुम्भयोने! अगले समयमें लवणसमुद्रतट सेतुबन्ध-सन्निहित प्रदेशमें मातृभक्त, कृष्णसेवापरायण धनञ्जय-नामक एक वणिक् रहते थे। वह सत्पथपर चलके वित्त उपार्ज्जनकर अर्थिगणके अभीष्टदानमें सन्तोषसाधन करते थे। याचकगण निज अभीष्टलाभसे सन्तुष्ट हो उनकी यशोराशिका प्रचार करते फिरते थे, धनञ्जय, असीम सम्पत्तिसमुन्नत होनेपर भी विनयावनत थे। अशेष गुणग्रामके आकर होनेपर भी गुणियोंके सामने आत्मगोपन करते थे। अति रूपवान् और धनवान् होकर भी परदारविमुख थे। सब कलाओंसे शोभमान होकर भी उनमें किञ्चिन्मात्र कलङ्करेखा नहीं थी। वह सत्यानृतवृत्ति अवलम्बन करनेपर भी सदा सत्यप्रिय थे। स्वयं हीनवर्ण होनेपर भी संसारके उत्कृष्टवर्णकी वह वर्णना करते। सदाचरणगामी होनेपर भी कृती धनञ्जय सुखयानमें विचरण करते। मेधावी धनञ्जय स्वयं अदरिद्र थे सही, किन्तु उनकी बुद्धि पापदरिद्र थी। हे मुने! एक दिन इन गुणसम्पन्न धनञ्जयकी वर्षीयसी माता कालवश पीड़ित हो पञ्चत्व प्राप्त हुईं। उनकी माताने शारदीय-मेघच्छायाकी तरह चञ्चल और वर्षाकालीन नदी जैसी परिपूर्ण यौवन काल प्राप्त हो अपने पतिके भोग-सुखमें वञ्चना की थी। जो नारी अचिर-स्थायी यौवनमदसे मत्त हो पतिवञ्चना करती हैं, वह अक्षय नरकभोग पाती है। रमणीको चरित्रकी रक्षा करना सर्व्वतोभावसे विधेय है। उसमें चरित्रदोष होनेसे स्वयं विष्ठागर्त्त नरकमें पतित होती हैं, फिर प्रलयकालतक गांवकी सुवरी, या वृक्षमें अधोमुखसे लम्बमान स्वविष्ठाभोजी वल्गुनी (चमगिदड़ी) अथवा वृक्षकोटरवासिनी दिवान्ध उल्लू हो जन्म लेती हैं। उसके धर्म्मपरायणपतिको भी सत्कर्म्मबल अर्ज्जित स्वर्गलोकसे भ्रष्ट होना पड़ता है। अतएव आपातसुखकर परपुरुषस्पर्शसे पुण्यैकभाजन अपने देहकी सदा रक्षा करना उचित है। पतिव्रता नारी निजदेह पतिको सम्पूर्ण आयत्तकर क्या उदयोद्योत दिवाकरके उदयरोधमें समर्थ नहीं हैं? अत्रिपत्नी साध्वीप्रधाना अनुसूयाने स्वामिभक्तिबलसे साक्षात् वेदत्रयस्वरूप सोम, दुर्व्वासा और दत्तात्रयको गर्भमें धारण किया था। नारीगण सतीत्वबलसे इस लोकमें अक्षयकीर्त्ति, परलोकमें स्वर्गवास और लक्ष्मीदेवीका सालोक्य लाभ कर सकती हैं। वह दुश्चारिणी धनञ्जय-प्रसूति चिरन्तन सतीत्वधर्म्मको जलाञ्जलि दे स्वैरचारिणी हो देहान्तसे नरकगामिनी हुई। हे मुने! धनञ्जय ऐसी

दुश्चरित्राके तनय होकर भी अपने सौभाग्यप्रभावसे किसी शिवभक्त योगीके सङ्गलाभसे तपोबलमें अतुल्य धार्म्मिक हुए। जननीका देहावसान होनेपर धर्म्मपरायण मातृभक्त धनञ्जयने काशीकी गङ्गामें उसको अस्थि निक्षेप करनेके लिये पहले अस्थिको पञ्चगव्य द्वारा, फिर पञ्चामृत द्वारा शोधनकर कर्पूरकुङ्कुमादि लिप्त करके विचित्र कुसुमसे पूजा। पहले गौड़ीय वस्त्रसे वेष्टनकर फिर पट्टवस्त्र, सुरसवस्त्र, माञ्जिष्ठवस्त्र और नेपालदेशजात कम्बलसे सुचारुरूप यथाक्रमसे वेष्टनकर उसके ऊपर विशुद्ध मृत्तिका लपेटी। फिर तांबेके सन्दूकमें निक्षिप्तकर सेतुबन्धसे उत्तरदेशगमनोपयोगी मार्ग अवलम्बनकर बणिक्ने यात्रा की। राहमें वह हीनजातियोंका स्पर्श नहीं करते थे, सदा पवित्रभावसे रहते और रातको मृत्तिका शय्यापर शयन करते थे। इस तरह क्रमागत अनभ्यस्त काम करनेसे एक दिन उनको प्रबल ज्वर आया। तब अकेले द्रव्यादि ले रास्ता चलना विषम कष्टकर बोध होनेपर उचित वेतन दे एक भारवाहीको साथ लेकर चले। हे कुम्भयोने! इस तरह वह बहुत कष्टसे काशीमें उपनीत हुए। वहां उपस्थित हो धनञ्जय अपने द्रव्यादि रक्षाका भार भारवाहीको दे आवश्यकमत खाद्य द्रव्यादि खरीदनेके लिये बाजार गये। इस अवसरमें भारवाही निर्जन देखकर उनका सब द्रव्यादि अन्वेषणकर "इसके भीतर अवश्य कोई बहुमूल्य द्रव्य है" शोचकर, वह अस्थिपूर्ण तांबेके सन्दूकको लेकर अपने घर गया। बहुत देरके बाद धनञ्जयने वासासमें आकर भारवाहीको वहां न देख व्यस्तसमस्तभावसे द्रव्यादि देखा और उसमें वह तांबेका सन्दूक न देखा। तब वह अपनी छातीमें कराघातकर हाहाकार करते हुए अतिकातरभावसे बहुत देरतक रोते रहे। इस तरह बहुत देरतक रोकर इतस्ततः अनुसन्धानकर भारवाहीको ढूंढ़नेके लिये उसके घरकी ओर चले। वह गङ्गास्नान और विश्वपति काशीनाथका दर्शन किये बिना ही जल्द जल्द पैर बढ़ाते यथासमय उस भारवाहीके घर पहुंचे। इधर भारवाही काशीसे चल गहनकाननमें प्रवेशकर अपहृत तांबेके सन्दूकको खोल उसमें बहुतसा अस्थिखण्ड देख, विपन्न अन्तःकरणसे अपने घर आया। प्याससे शुष्ककण्ठ धनञ्जयको उसके घर उपस्थित होनेपर भग्नस्तम्भमें वही तांबेका सन्दूक और वस्त्रखण्ड देख कुछ आशा हुई। उन्होंने भारवाहीकी भार्य्यासे मृदुतासहित पूछा, "अरे! सच बोल, कुछ भी शङ्का न कर, मैं और भी अर्थ तुझे दूंगा। तेरा पति कहां गया है? मेरी जननीकी अस्थि प्रत्यर्पण कर। उसके देनेसे मैं निश्चय ही तुझे अर्थ प्रदान करूंगा। तुझे किसी तरहका कष्ट न

दूंगा। तेरे स्वामीने लोभमें पड़कर मेरी जननीका अस्थिपूर्ण ताम्रपात्र अपहरण किया है; इसमें उसका भी कोई दोष नहीं. मेरी माताके दुष्कर्म्मफलसे ही ऐसा हुआ। अथवा उनका भी कुछ दोष नहीं, मेरे अभाग्यबलसे ही ऐसी घटना घटी है। अरे अरपत्नि! जननीके लिये जो काम करना पुत्रका कर्त्तव्य है, वह मेरे अदृष्टमें निश्चित ही नहीं। मैं यथासाध्य मातृकार्य्य साधनके लिये उद्यत हुआ था सही, किन्तु दुरदृष्ट वश वह हो न सका। तेरा स्वामी निःशङ्कचित्तसे वह अस्थि दिखा दे, उसे शङ्का करनेका कोई कारण नहीं है, उसके आने और अस्थि दिखा देनेपर उसे अपर्य्याप्त अर्थ प्रदान करूंगा।" धनञ्जयकी बात सुनकर शवरपत्नीने अपने स्वामीको बुलाया। वहां आकर उसका स्वामी वणिक्को देख लज्जासे अवनतमस्तक हुआ और उससे सब वृत्तान्त निवेदनकर साथमें ले उस अरण्यमें गया। हे मुने! अदृष्टक्रमसे भारवाही उस जगहको भूल गया। वह वनमें नाना-स्थानोंमें भ्रमण करने लगा। भ्रान्तचित्त भारवाही एक वनसे दूसरे वनमें वार वार भ्रमणकर जब श्रान्त क्लान्त हो पड़ा, तब उस वणिक्श्रेष्ठको निविड़ अरण्यमें परित्यागकर अपने गांव भाग आया। इस तरह परित्यक्त वह वणिक् धनञ्जय तीन दिन वनमें भटककर अन्तमें क्षुधासे कातर और तृष्णासे शुष्कतालु हो हाहाकार करते करते म्लानवदन हो काशी आये। काशीमें प्रत्यागत हो धनञ्जय अपनी माताके परपुरुषसंसर्गकी बात लोगोंसे सुनकर प्रयाग और गयातीर्थकार्य्य सम्पन्नकर स्वदेश आये। हे अगस्त्य! उस दुश्चरित्र धनञ्जयकी माताका अस्थिसमूह विश्वनाथकी अनुमति न होनेकी वजह काशीधाममें प्रवेश करके भी तत्क्षणात् वहांसे फिर बाहर निकाल दिया गया। इसी तरह धर्म्मबोधसे यदि पापी व्यक्ति काशीमें काशीश्वरकी बे अनुमति प्रविष्ट हो, तो वह क्षेत्रफल नहीं लाभ कर सकता और तत्क्षणात् वहांसे बाहर निकाल दिया जाता है। यह सब कारण देखकर निश्चय बोध होता है, कि एकमात्र विश्वनाथकी अनुमति ही काशीवासका मूल है। इस काशीक्षेत्रकी रक्षा करनेके लिये असि और वरणा नाम्नी नदी निर्म्मित हुई हैं। हे मुने! उसी समयसे असि और वरणाका सङ्गम होनेसे यह काशी "वाराणसी" नामसे विख्यात हुई है। इस लोकमें वाराणसी साक्षात् दिव्य करुणारूपिणी हैं; क्योंकि, इस अविमुक्त क्षेत्रमें देह त्यागकर मनुष्यगण विना क्लेशके विश्वेश्वररूप परमधामको प्राप्त हो उसीसे ही लीन और कैवल्यपदको प्राप्त हो सकते हैं। वाराणसी जीवको सदा इस तरह उपदेश करती रही है, कि हे जीव! तुमने इस

जगतमें अनेक जन्म ग्रहण किया है और अनेक बार तीर्थ-स्नानादिकर मृत्युमुखमें पतित हुए हो, किन्तु किसी तरह भी ऐकान्तिक शान्ति लाभ नहीं कर सके। यदि तुम हमारा अवलम्बनकर जीवनपात कर सको, तो मोक्षपद लाभकर शिवत्वको प्राप्त हो सकोगे। और और तीर्थजलमें प्राणत्याग करनेसे केवल ब्राह्मण, देवादि पद लाभ कर सकते हैं; किन्तु बाराणसीमें प्राणत्याग करनेसे ब्राह्मणकी बात तो दूर रही, चाण्डाल पर्य्यन्त भी पुनरावृत्तिके लिये मुक्तिपदको प्राप्त हो सकता है। यह काशीपुरी ही अपार-भवपारावारकी पारस्वरूपा है। जहां भगवान् त्रिपुरारि स्वेच्छानुसार नरगणको परम पुरुषार्थ प्रदान करते हैं। जीव अनन्ततीर्थस्नानके फलसे कलुषित शरीर त्यागकर, देवशरीर लाभ करता है। किन्तु इस काशीक्षेत्रके किसी स्थानमें अकिञ्चत्कर कलेवर त्याग करके, सायुज्य मुक्तिस्वरूप शिवमूर्त्ति लाभ करता है। जीवगणको त्रितापसंहारिणी यह काशीपुरी प्राकृत नगरके देहावसानसे, जीवब्रह्मका ऐक्यरूप तत्वज्ञान न होनेपर भी, उसे तारकब्रह्मका नाम सुना, परम-पुरुषका साक्षात् विधान करती है। तब फिर संसारमें आनेकी आशङ्का नहीं रहती। अभीष्टपदप्राप्ति-आशासे, जो व्यक्ति धर्म्मार्थसुखका निलय इष्टप्रद निजदेह बाराणसीक्षेत्रमें त्याग न करके, आनन्द प्रकाश करते हैं, वह कैसे भ्रान्त हैं! यदि वह न पावें, तो अभीष्टलाभकी आशा दूर रखें, मूल देह पर्य्यन्त उनका नष्ट होता है। हे काशीवासी जनगण! भगवान् अर्द्धनारीश्वर मूर्त्ति कपाललोचन सुकृतिके भाजन दुष्ट देहकी परिवर्त्तसे केवल निर्व्वाणपद प्रदान करते हैं यह न समझना। तुम लोगोंको और जन्मयन्त्रणा नहीं भोगना पड़ेगी। बाराणसीक्षेत्र, जाज्वल्यमान असीम गुणकी एकमात्र भूमि है; कारण, यहांके रहनेवाले देहधारी मात्र ही इस कालमें भगवान् चन्द्रशेखर-प्रभावसे कण्ठमें गरल और कपालमें नयन धारणकर गौरीमूर्त्ति द्वारा विभूषितवामाङ्ग हो साक्षात् शिवकी तरह विराजमान हैं और देहान्तके बाद फिर देह धारण नहीं करना पड़ता। बाराणसी पहलेसे ही सुखद आनन्द-कानन है; वहां चक्रसरसी मणिकर्णिका, स्वर्णदी गङ्गाका संयोग और भगवान् विश्वनाथके सदा सान्निध्य रहनेसे मुक्तिके सब कारण विद्यमान हैं। इस संसारमें असि बरणा दोनो नदियोंके सङ्गमसे अति गौरववती और सुरनदीसम्पर्कसे शोभमाना बाराणसी ही अमल अचल मोक्षलक्ष्मीका विश्वस्त स्थान है। हाय! मूढ़मति जन्तुगण ऐसी भूमि त्याग कर अन्यत्र क्यों वृथा क्लेश भोग करते हैं? हाय! मूढ़ जीवगण अवश्य ही गर्भयन्त्रणा और कृतान्त दूतके बन्धनताड़न विस्मृत होकर रहेंगे; नहीं

तो करस्थित मुक्तिस्वरूप शङ्करकी अनुग्रह लभ्य काशी त्यागकर क्यों दूसरी जगह जावेंगे ? पान, अवगाहन अर्चना और अनुत्याग करनेसे अपरापर तीर्थ सब सद्यः पाप हरण करते हैं, बहुत कल्याण होता है और स्वर्गफलदानमें समर्थ होते हैं; किन्तु यह वाराणसी संसारका मूलोच्छेद करती है। काशीपुरीके परिसरमें मणिकर्णिकामें देहत्याग करनेसे, मनुष्यगण गलेमें नीलरेखा-लाञ्छित भाललोचनसम्पन्न और वामाङ्गमें नारीमूर्त्तिविराजित देह धारण करते हैं। जो व्यक्ति मणिकर्णिकाके अतुल माहात्म्यको जान मलमय पूयगन्धि कलेवर त्याग करते हैं, वह तत्क्षणात् आत्मज्ञानरूप परम ज्योतिमें मिल जाते हैं; कल्प कल्पान्तरमें भी उनका वियोग नहीं होता। रागादि दोषसे कलुषितचित्त पापिगण ही अनुपम दिव्यप्रभावशालिनी काशीपुरीको और तीर्थोंके समान बोध करते हैं; उन लोगोंसे सम्भाषण करना उचित नहीं। रे मूढ़ नर! भगवान् स्मरहरकी प्रिय राजधानी वाराणसी छोड़कर कहां दिगदिगन्तरमें भ्रमण करता है! विधिप्रभृति देवदुर्लभ अचञ्चल मोक्षलक्ष्मी पाकर भी चपलस्वभावा लक्ष्मीकी झूठी कामना क्यों करता है! उद्यमशील व्यक्तिको विद्या, धन, जन, भवन, गज, अश्व, स्रक्, चन्दन, परम रमणीय वनिता और स्वर्ग, अधिक क्या मुक्ति भी दुर्लभ नहीं है; किन्तु एकमात्र वाराणसी दुर्लभ है। पहले विधाताने तुलना परीक्षा करनेके लिये वैकुण्ठ प्रभृति लोकसमूह एक ओर और काशीपुरीको दूसरी ओर रखकर तुलादण्डसे तौला था, तो उक्त सब लोक लघु हुए और काशीपुरी पुरुषार्थ चतुष्टयके गुरुत्व निबन्धनसे गुरु हुई थी। विश्वनाथकी कृपासे काशीपुरीमें वास कर पानेपर, मनुष्य हो या जन्तु, सभी अद्वितीय रुद्रदेव और मान्य होते और वह नाना उपसर्गजनित या स्वाभाविक दुःखभारसे आक्रान्त होनेपर भी देहावसानमें कर्मक्षयकर शिवबीजमें लीन हो जाते हैं। मूढ़ जन्तुगण भस्मकांस्यकी तरह अकिञ्चितकर, अवश्यनश्वर, जन्ममृत्यु क्लेशके आश्रय देहको काशीमें त्यागकर, तद्विनिमयसे परमानन्दसन्दोहभूमि तेजोमय मूर्त्ति परिग्रहमें क्यों निश्चेष्ट हैं? जहां मरणकालमें स्वयं भगवान् महादेव श्रुतिमूलमें तारकब्रह्म नाम उपदेशकर, जननीजठरयन्त्रणा दूर करते हैं, उस काशीपुरीके क्षितितलमें विद्यमान रहनेपर भी हतबुद्धि जीवगण धननाश, बन्धुनाश प्रभृति विपत्तिराशिसे अभिभूत होशोक सहते हैं। काशीवासी होकर यदि कोई दिनमें दो तीन बार भोजन करे या स्वेच्छाचारी रहे, तब भी वह वाणप्रस्थ, वायुभक्ष, जितेन्द्रियकी अपेक्षा अनेकगुणमें श्रेष्ठ है। इस काशीमें मरनेसे पुण्यात्मा और पापात्माकी

गतिका कोई इतरविशेष नहीं, कारण ऊपरक्षेत्रमें उत्पन्न बीजकी तरह उनके कर्म्मजनित बीज हरनेत्रसम्भूत अनलसे दग्ध हो अङ्कुरित होने नहीं पाता। अहो नगेन्द्रनन्दिनि! शशक, मशक, शुक, बक, चटक, वृक, जम्बुक, तुरग, उरग, वानर, नर जो कोई काशीमें मृत्युको प्राप्त होता, वह मुक्तिलाभ करता है। जो काशीक्षेत्रमें निरन्तर वास करते हैं, वह अति सौम्य रुद्राक्षमालारूप फणीन्द्रभूषणसे भूषित और त्रिपुण्डरूप अर्द्धचन्द्रधारी पृथिवीमें मेरे पारिषद्रूपसे गण्य होते हैं। इस काशीमें जलचर, स्थलचर. मत्स्य, शृगाल प्रभृति यावतीय जन्तु रहते हैं, वह सभी मेरी कृपासे रुद्ररूप धारण करते और देहान्तपर मुझमें विलीन होते हैं! हे देवि! स्वर्गमें वर्षेषु नामक, अन्तरीक्षमें वातेषु नामक और पृथिवीमें अन्नेषी नामक जो रुद्रगण अवस्थित हैं और पूर्व्वादि चतुर्दिक दश दश संख्या जो रुद्रगण हैं, देवगण ऊर्द्धस्थित जिन रुद्रगणकी वर्णना कर चुके हैं और पातालमें जो असंख्य रुद्र वास करते हैं, उनकी अपेक्षा काशीवासी रुद्ररूपी जीवगण श्रेष्ठ हैं, इस विषयमें संशय नहीं! हे कुम्भयोने! इसलिये ही अविमुक्त काशीक्षेत्र "रुद्रवास" नामसे कीर्त्तित है और इसलिये ही काशीस्थित चाहे कोई वर्ण या तदितर जीवके श्रद्धापूर्व्वक ईश्वरज्ञानसे पूजा करनेपर मनुष्य रुद्रार्चनाका फल लाभ करता है। हे मुने! शब्दशास्त्रज्ञ पण्डित लोगोंने "श्मन्" शब्दका अर्थ शव और "शान" शब्दका अर्थ शयन क्रिया है, सुतरां "श्मशान" शब्दका अर्थ शवका शयनस्थान हुआ। महाभूतगण कल्पान्त कालमें भी इस काशीमें शवरूपसे शयन करते रहते हैं, इसलिये ही काशीको महाश्मशान कहते हैं। प्रलयके समय इस अविमुक्तक्षेत्रकी भूमि जलमें, जल तेजोराशिमें, तेज वायुमें और वायु आकाशमें विलयको प्राप्त होता है। इसके उपरान्त, आकाश अहङ्कार तत्त्वमें, अहङ्कारतत्त्व षोड़श विकारके साथ बुद्धिसंज्ञक महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्व प्रकृतिमें लीन हो जाता है। फिर त्रिगुणात्मिका प्रकृति निर्गुण पुरुषमें विलीन हो जाती है। उक्त पुरुष ही पञ्चविंशतितम तत्त्व हैं, वही जीव और वही देहरूप गृहके एकमात्र अधिपति हैं। हे मुने! इसीको प्राकृत प्रलय कहते हैं। इस प्रलय कालमें ब्रह्मा, रुद्र या विष्णु कोई भी विद्यमान नहीं रहते। फिर महाकाल मूर्त्ति परमेश्वर उन जीवको भी स्वकीयरूपमें अन्तर्हित करते हैं। उक्त महाकाल मूर्त्ति परमेश्वर ही महाविष्णु नामसे कहे जाते और उन्हींको महादेव कहते हैं। वही कालरूपी परमेश्वर आद्यन्तमध्यहीन, वही शिव, श्रीपति और पार्व्वतीपति हैं। दैनन्दिन प्रलयकालमें विनष्ट जीवगणकी

अस्थिमालासे विभूषित भगवान् देवादिदेव अपनी विहारनगरी काशीपुरीको त्रिशूला-ग्रभागमें स्थापनकर रक्षा करते हैं। इस-लिये ही वहां कलिकालका प्रभाव नहीं है। स्कन्दने कहा,—हे द्विज! देवदेव शम्भुने पूर्व्वकालमें देवी पार्व्वती और विष्णुसे अविमुक्तक्षेत्रको वाराणसी, काशी, रुद्रावास, महाश्मशान और आनन्दकानन नामसे इसी तरह कीर्त्तन किया था। मैंने वह सब सुना था, इस समय तुम्हारे निकट वही काशी-संक्रान्त महारहस्य कीर्त्तित हुआ। इस पवित्र अध्यायके पढ़नेसे महा-पातक नष्ट होता और द्विजगणके यथाविधि सुनानेसे शिवलोककी प्राप्ति होती है। हे कलशोद्भव! इसके उपरान्त काशीके वि-षय क्या सुननेकी इच्छा करते हो, कहो; मुझे भी काशी-वृत्तान्त कहनेमें निरतिशय आनन्द होता है।

त्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥

एकत्रिंश अध्याय।

भैरव प्रादुर्भाव।

अगस्त्यने कहा,—हे सर्व्वज्ञ, हृदया-नन्द, तारकनिसूदन, स्कन्द! काशीकी बात सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हुई, अतएव यदि मेरे प्रति आपका अनुग्रह हो, तो मुझे तत्श्रवणयोग्य विवेचना करिये, ऐसा ही है, तो काशीके भैरवकी कथा कहिये। काशीमें भैरवके नामसे कौन अवस्थित हैं? उनका रूप कैसा है? काम क्या है? उनके कितने नाम हैं? आराधना करनेसे किस प्रकार वह साधकोंको सिद्धिदान करते हैं और उन भैरवने किस समय आराधित हो झटिति अभीष्टसिद्धि की? स्कन्दने कहा,—हे महाभाग! वाराणसीके प्रति तुम्हारा जैसा प्रेम देखता हूं, समझता हूं, वैसा और किसीका नहीं है, अतएव मैं अशेषरूपसे महापातकनाशन भैरवकी कथा कहता हूं; इसके सुननेसे काशीवा-सका फल निर्व्विघ्न प्राप्त होता है। जो सुपक्व वृहत् रसालफल सदृश इस निखिल ब्रह्माण्डको पाणिद्वयसे दृढ़ निष्पीड़ितकर मुहुर्मुहुः दूर निक्षेपकर उसका रस पान करते हैं और उस रसपानसे उन्मत्तकी तरह ही उद्धत नृत्य करते हैं, वह महा-भैरव अपायसे त्रिभुवन रक्षा करें। हे कुम्भयोने! विष्णु चतुर्भुज और सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा चतुर्मुख होनेपर भी महेश्वरकी महिमासे अवगत नहीं हैं। यह विचित्र बात नहीं है, कारण महादेवकी माया अनतिक्रमणीया है। उस मायासे मोहित हो सभी परम पतिको जान नहीं सकते। वह परमेश्वर यदि अपनेको जनावें, तो ब्रह्मादि देवगण उन्हें जान सकते हैं, अपनी इच्छासे नहीं जान सकते। उन स्वात्मा-राम महेश्वरके सर्व्वव्यापी होनेपर भी उन्हें कोई देख नहीं सकता। मूढ़गण ही

वाङ्मनातीत उन महेश्वरको सामान्य देवता समझते हैं। हे विप्र! पूर्व्वकालमें सुमेरु-शिखरपर महर्षिगणने लोकेश्वर पितामहको प्रणामकर पूछा, कि एकमात्र कौन तत्त्व अव्यय है? तब वह लोकस्रष्टा पितामह, महेश्वरकी मायासे मोहित हो परम तत्त्वको न जानकर अपनेको ही वैसा श्रेष्ठ जान वर्णन करने लगे, "मैं ही जगद्योनि, विधाता, स्वयम्भु, एकमात्र ईश्वर और अनादि ब्रह्मस्वरूप हूं। मेरी अर्चना न करनेसे कोई भी मुक्तिलाभमें समर्थ नहीं है। मैं ही त्रिजगत्का सृष्टिसंहारकर्त्ता हूं। मुझसे बढ़कर कोई भी नहीं है, मैं ही सब देवताओंमें श्रेष्ठ हूं।" ब्रह्माकी यह बात सुनकर नारायणके अंशोत्पन्न क्रतु हंसकर क्रोधरक्तलोचन हो कहने लगे, "तुम परम तत्त्वसे अवगत न होकर क्या कह रहे हो? भवादृश योगीको एवंविध मोह उचित नहीं है। मैं ही लोकत्रयकर्त्ता, यज्ञ और परात्पर नारायण हूं। हे अज! मेरी अवज्ञाकर त्रिजगतका जीवित रहना असम्भव है। मैं ही परम ज्योतिः और परम गति हूं। तुम मेरे द्वारा नियुक्त होकर ही यह सृष्टिकार्य्य सम्पादन करते हो।" इस तरह मोहवशतः परस्पर जयेच्छाके विरोधी हो विधि और क्रतुने प्रमाणार्थ चतुर्व्वेदसे पूछा, "हे देवगण! आपलोगोंकी सब जगह ही प्रमाणरूपसे परम प्रतिष्ठा है, इसमें संशय नहीं; अतएव कहिये, क्या परम तत्त्वसे आप अवगत हैं?" श्रुतिगणने कहा,—"हे सृष्टिस्थितिकारक देवद्वय! यदि हम लोगोंकी बात मानें, तो आप लोगोंका संशयच्छेदि प्रमाण दे सकते हैं।" श्रुतिगणकी यह बात सुन विधि और क्रतुने कहा,—"आप लोगोंकी बात ही प्रमाण है, अतए वविशेषरूपसे कहिये, कि परम तत्त्व क्या है।" तब ऋग्वेदने कहा,—"जिसके अन्तरमें समुदय भूतगण अवस्थित हैं, जिससे समस्त उद्भूत होता है और जिसे पण्डितगण 'तत्' शब्दका वाच्य कहते हैं, वह एक रुद्र ही परम तत्त्व हैं।" यजुर्व्वेदने कहा,—"जो निखिल याग और योग द्वारा आराधित होते हैं और जिसके बलसे मैं प्रमाणस्वरूपमें गण्य हूं, वह सर्व्वदर्शी शिव ही परम तत्त्व है।" सामवेदने कहा,—"जो इस विश्वमण्डलका भ्रमण कराते हैं, योगिगण जिनका ध्यान करते रहते हैं और जिनकी ज्योतिसे विश्व उद्भासित है, वह त्र्यम्बक ही एक मात्र परम तत्त्व हैं।" अथर्व्ववेदने कहा,—"भक्तिसाधन बलसे मनुष्यगण जिनका दर्शन पाते हैं, वही कैवल्यरूपी दुःखहर शङ्करको ही एक मात्र परम तत्त्व कहते हैं।" हे मुने! श्रुतिगणकी ऐसी बात सुनकर मायामोहित मोहान्ध उन विधि और क्रतुने ईषत् हास्यकर कहा, "परम ब्रह्म सङ्गमुक्त हैं, तब क्यों श्मशान-

भूमिमें शिवा सहित निरन्तर क्रीड़ारत हैं, वह भस्मलिप्ताङ्ग, जटाजूटधारी, वृषवाहन, सर्पभूषण, विकटवेश, दिगम्बर प्रमथनाथ परब्रह्म कैसे हो सकते हैं?" उन लोगोंकी यह बात सुनकर निराशाके प्रणवरूपी सनातन मूर्त्तिमान हो हंसकर उन लोगोंसे बोले। प्रणवने कहा,—लीलारूपधारी भगवान् रुद्ररूपी यह हर निज आत्मातिरिक्त पत्नीके साथ कदापि क्रीड़ा नहीं करते। यह भगवान् ईश्वर स्वयं सनातन ज्योतिः-स्वरूप हैं। यह शिवा उनकी ही आनन्द-रूप शक्ति हैं, उनसे भिन्न नहीं हैं! प्रणवके ऐसा कहनेपर भी श्रीकण्ठकी माया वशतः विधि और क्रतुदेवका अज्ञान तिरोहित न हुआ। फिर उन उभयके मध्यस्थलमें निज प्रभासे द्युलोक और भूर्लोकका मध्यभाग परिपूर्णकर एक परमज्योति प्रादुर्भूत हुई! उस ज्योतिमण्डलमें एक पुरुषका आकार दिखाई दिया। उसे देखते ही ब्रह्माका पञ्चम मस्तक क्रोधसे प्रज्वलित हुआ। उस समय हिरण्यगर्भ ब्रह्मा, "हम उभयके बीच पुरुषाकृतिधारी वह कौन हैं?" ऐसा मन ही मन विचार रहे थे, कि इसी अवसरमें त्रिशूलपाणि, ललाटलोचन भगवान् महादेवको देखा और उन्हें पहचानकर बोले, "पूर्व्वमें तुम्हीं मेरे भाल-स्थलसे आविर्भूत हुए थे और रोदन हेतु तुम्हारा "रुद्र" नाम रखा था, इस समय हे पुत्र! तुम मेरे शरणागत हो, मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा।" पद्मयोनिकी ऐसी सगर्व्व बात सुन ईश्वरने, कोपसे एक भैरवाकृति पुरुष सृष्टिकर उनसे कहा,—"हे काल भैरव! तुम इन ब्रह्माका शासन करो। तुम कालकी तरह विराजमान हो, अतएव तुम्हारा नाम 'कालराज' होगा और तुम विश्वभरणमें समर्थ हो, इसलिये तुम्हारा नाम 'भैरव' होगा। काल भी तुमसे भय पावेगा, इससे तुम्हारा नाम 'कालभैरव' होगा। तुम तुष्ट हो दुर्वृत्तिगणको मर्द्दन करोगे, इसलिये तुम 'आमर्द्दक' नामसे विख्यात होगे, और तत्क्षणात् भक्तगणका पापभक्षण करोगे, इसलिये तुम्हारा नाम 'पापभक्षण' होगा। हे कालराज! मेरी जो सर्व्वापेक्षा श्रेष्ठ काशीपुरी है, वहां तुम्हारा सदा आधिपत्य रहेगा। उस स्थानका पापपुण्यकर्म्म चित्रगुप्त नहीं लिखने पावेंगे।" फिर कालभैरने महेश्वरसे यह सब वर पाकर, बायें हाथकी अङ्गुलिनखाग्र द्वारा तत्क्षणात् विधाताका मस्तक छेदन किया। जो अङ्ग अपराध करे, उसीको शासन करना उचित है। अतएव ब्रह्माने जिस अङ्गसे निन्दा की थी, वह पञ्चम मस्तक ही कालभैरव द्वारा छिन्न हुआ। यह देखकर यज्ञमूर्त्तिधारी विष्णुने शङ्करकी स्तुति आरम्भ की। हिरण्यगर्भ भी भीत हो "शतरुद्रिय" जप करने लगे। तब भक्त-वत्सल महादेवने परितुष्ट होकर ब्रह्मा

और विष्णुकी आश्वास प्रदानकर निज मूर्त्त्यन्तर कपर्द्दी भैरवसे कहा,—"हे नील-लोहित! यह यज्ञरूपी विष्णु और ब्रह्मा तुम्हारे मान्य हैं। तुम ब्रह्माका यह कपाल धारणकर, ब्रह्महत्या पाप अपनोदनके लिये, कापालिक व्रत अवलम्बन करके लोकशिक्षार्थ अपना व्रत दिखा, नियत भिक्षापूर्व्वक विचरण करो।" यह बात कहकर तेजोरूपी सनातन भगवान् अन्त-र्हित हुए। इसके उपरान्त शिव भी रक्त-वर्णा, रक्ताम्बरधारिणी, रक्तमाल्यानुलेपना, दंष्टाकरालवदना, जिह्वाज्वलनभीषणा, अन्त-रीक्षैकचरणा, बहुशोणितपायिनी, कर्पर-धारिणी, पिङ्गलतारका, भैरवकी भी भीतिप्रदायिनी, ब्रह्महत्या नाम्नी कन्याकी सृष्टिकर, उनको कालभैरवके साथ जानेका आदेश दे और 'वाराणसीको छोड़ सब जगह ही तुम्हारी गति अव्याहत होगी।' कहकर अन्तर्हित हुए। उन ब्रह्महत्या नाम्नी कन्याके संसर्गसे स्वभावत भैरव कृष्णवर्ण हुए और देवदेवके आदेशसे कापा-लिक व्रत अवलम्बनकर कपालहस्त हो त्रिभुवन भ्रमण करने लगे। सुदारुण ब्रह्म-हत्याने सत्यलोक, वैकुण्ठलोक और इन्द्रादि-नगरीमें भी उन कालभैरवको त्याग नहीं किया। त्रिजगत्पति रुद्ररूपी कालभैरव भी व्रतावलम्बनपूर्व्वक त्रिभुवन विचरण और प्रतितीर्थमें भ्रमण करनेपर भी ब्रह्म-हत्यामुक्त नहीं हुए। हे कुम्भसम्भव! इसीके द्वारा अनुमान करो, कि ब्रह्मह-त्यापनोदिनी काशीका कैसा माहात्म्य है। त्रिलोकमें अनेक तीर्थ और बहुत पुण्यायतन हैं, किन्तु वह काशीकी षोड़श कलाके एक कलाके योग्य भी नहीं हैं। ब्रह्महत्या प्रभृति पापसमूह तभीतक भीषण गर्जन करता है, जबतक वह पापरूप पर्व्वतकी अशनिस्वरूप काशीका नाम नहीं सुनता। फिर प्रमथसेवित कापालिकव्रतधारी भग-वान् कालभैरव त्रिभुवन विचरणकर नारायणके निकेतनमें उपस्थित हुए। भगवान् गरुड़ध्वज, सर्पकुण्डलधारी त्रिनेत्र भीषणाकृति महादेवांशसम्भूत कालभैरवको उपस्थित देख भूतलमें दण्डवत् पतित हुए। यह देखकर अन्यान्य देवगण, मुनिगण और देवपत्नी सबने चारोओरसे उन्हें प्रणाम किया। फिर लक्ष्मीपति हरिने प्रणतभावसे मस्तकपर अञ्जलि बांध विविध स्तवसे उनका स्तव कर, क्षीरोदमन्थनोद्भूत पद्मालयासे कहा, अहो प्रिये कमललोचने! देखो, आज तुम धन्या हो, अहो सुभगे! अनघे! सुश्रोणि देवि! मैं भी आज धन्य हूं; कारण हम दोनोंने आज त्रिजगत्-पतिका साक्षात्कार लाभ किया है। यही धाता, विधाता, लोकसमूहके प्रभु, ईश्वर, अनादि, शान्त, शरण, परात्पर और पर-मात्मा हैं। यही सर्व्वज्ञ, सर्व्वयोगीश्वर, सर्व्वभूतैकभावन, सर्व्वभूतके अन्तरात्मा और सदा सबके सर्व्वाभीष्टदाता हैं। शान्त योगि-

गण तन्द्राहीन निरुद्धश्वास और ध्यानपरायण हो ज्ञानचक्षुसे जिनको हृदयमें देखते हैं, वही आज यहां आये हैं, निरीक्षण करो। जितेन्द्रिय वेदतत्त्वज्ञ योगिगण जिनको जानते हैं, वही सर्व्वव्यापी भगवान् अरूप होनेपर भी आज रूपवान् हो यहां आये हैं। अहो! भगवान् परमब्रह्मकी विचित्र लीला है! जिनका नाम कीर्त्तन करनेसे देह धारण नहीं करना पड़ता; वह आज देहधारी हैं। जिनका दर्शन करनेसे मनुष्यको पृथिवीमें पुनर्जन्म लेना नहीं पड़ता, वही शशिमौलि भगवान् त्रिलोचन यहां आये हैं। आज पद्मदल जैसा मेरे सुविशाल नयनद्वय सार्थक हुए, क्योंकि लीलारूपधारी भगवान्‌का दर्शन पाया है। देवताओंके देवत्वपदको धिक् है! जिन्हें भगवान् शङ्करका दर्शन करके भी सर्व्वदुःखहर निर्व्वाणपदलाभ नहीं होता। हे देवि! जगतमें देवत्वपद जैसा अशुभकर और कुछ भी नहीं है; क्योंकि सर्व्वदेवपतिका दर्शन करके भी मैं मुक्तिलाभ कर नहीं सकता। आनन्दपुलकित देहसे हृषिकेशने लक्ष्मीसे कहकर प्रणतापूर्व्वक वृषवाहन महादेवसे कहा, कि हे सर्व्वपापहर! विभो! आप अव्यय देवदेव हैं, सर्व्वज्ञ और त्रिजगत्‌के विधाता होनेपर भी आपके यह कैसे आचरण हैं? हे देवपते! महाद्युते! त्रिलोचन! आपकी कैसी लीला है? हे स्मरान्तक! विरूपाक्ष! आपके ऐसे आचरणोंका कारण क्या है? हे शक्तिपते! भगवन्! शम्भो! किसलिये भिक्षा करते हुए विचर रहे हैं? हे प्रणतजनको त्रैलोक्यराज्यप्रद! जगत्पते! इस विषयमें मुझे संशय उत्पन्न हुआ है। विष्णुकी यह बात सुन शम्भुने उनसे कहा, कि हे विष्णो! मैंने उङ्गलीके नखाग्र द्वारा ब्रह्माका मस्तक छेदन किया था, उसी समयसे यह शुभव्रत धारण किया है। महेश्वरके ऐसा कहनेपर पुण्डरीकाक्ष विष्णुने अवनतमस्तक हो ईषत् हास्यकर फिर निवेदन किया, हे सर्व्वविज्ञाननायक! आप अपनी इच्छासे क्रीड़ा करिये, किन्तु हे महादेव! मायाबलसे मुझे आच्छन्न करना आपको उचित नहीं। हे ईश! आपके आदेशसे मैं नाभिपद्मकोषसे कल्प कल्पमें कोटि कोटि ब्रह्मा सृजन करता हूं। हे विभो! मूढ़गणकी अनुत्तरणीय इस मायाको त्याग करिये; हे महादेव! मैं और अपरापर सभी आपकी मायासे मोहित हैं; तो हे शिवापते! आपकी चेष्टासे यथायथ अवगत हो सकता हूं। हे हर! संहारकाल उपस्थित होनेपर आप जिस समय समस्त देवता, मुनि और वर्णाश्रमविशिष्ट लोगोंका संहार करेंगे, तब आपकी ब्रह्महत्या प्रभृति कहां रहेगी? हे शम्भो! आप किसीके भी परतन्त्र नहीं हैं, इसलिये आप यथेच्छ क्रीड़ा करते हैं। हे अनघ! कितने ही

ब्रह्माकी अस्थिमाला आपके कण्ठमें शोभित थीं, तब आपकी ब्रह्महत्या कहां थी? हे ईश! महापाप करके भी जो व्यक्ति आपको भक्तिपूर्व्वक स्मरण करते हैं, उनका पाप लीन होता है। जैसे सूर्य्यके निकट अन्धकार नहीं आ सकता, उसी तरह आपके भक्तोंका पाप तत्क्षणात् नष्ट होता है। जो पुण्यवान् व्यक्ति आपके चरणयुगलका ध्यान करते हैं, उनका ब्रह्महत्याजनित पाप भी क्षय होता है। हे जगत्पते! जो व्यक्ति आपाका नाम कीर्त्तन करते, उनका पाप निचय गिरिशृङ्ग-परिमित होनेपर भी उन्हें कष्ट देनेमें समर्थ नहीं है। हे लोक-जीवन! कहां रजोगुण और तमोगुण वर्द्धित परितापदायक पापराशि, कहां आपका जगद्व्यापक रोग-हारी मङ्गलमय शिवनाम? हे अन्धकरिपो! यदि कभी मनुष्यके ओष्ठपुटसे 'शिव,' 'शङ्कर,' 'चन्द्र-शेखर'—आदि नाम बारंबार निकले, तो और संसारमें आना नहीं होता। हे ईश! आप परमात्मा हैं, परमज्योतिः और इच्छामूर्त्तिधारी हैं; यह सब आपकी कौतूहल मात्र हैं, नहीं तो ईश्वरको परा-धीनता कहां? हे देवेश! आज मैं धन्य हूं। योगिगण जिनका दर्शन नहीं पाते, उन्हीं अक्षय जगन्निनाद परमेश्वरका दर्शन मिला। आज मेरा परम लाभ और परम मङ्गल हुआ। आपके दर्शन-रूप अमृतसे परितृप्त हो स्वर्ग और मुक्ति पर्य्यन्त तृणज्ञान करता हूं। विष्णुके ऐसा कहनेपर स्वयं लक्ष्मीने महादेवके पात्रमें मनोरथवती नामक पवित्र भिक्षा प्रदान की। तब भैरवराज भी परमा-नन्दसे भिक्षाचरणके लिये वहांसे निर्गत हुए। जनार्द्दन विष्णुने, ब्रह्महत्याको उनके साथ जाते देख उन्हें बुला त्रिशू-लीको परित्याग करने कहा। इसपर ब्रह्महत्याने कहा, मैं इस विषयमें वृषध्व-जकी सेवाकर आपको पवित्र करूंगी, नहीं तो महादेवका साक्षात्कार कहां पाऊंगी? कहकर ब्रह्महत्याने विष्णुकी प्रार्थना करनेपर भी उनका साथ न छोड़ा। फिर सहास्यमुख शम्भुने विष्णुसे कहा, हे बह्नमानद गोविन्द! मैं तुम्हारे वाक्य सुधापानसे परितृप्त हुआ हूं, अतएव हे अनघ! मैं तुम्हें वर देता हूं, तुम वरकी प्रार्थना करो। भिक्षा करने जाकर भिक्षुकलोग सम्मान पानेसे जैसे सुखी और आनन्दित होते हैं, प्रचुर पवित्र भिक्षा-द्रव्य-लाभसे भी वह उतने आनन्दित नहीं होते। यह सुनकर विष्णुने कहा,—यही मेरा श्लाघनीय वर है, कि मैं मनोरम-पथके सिवा देवगणके अधिपति देवदेवका दर्शन करता रहूं। हे हर! आपका दर्शन, अञ्जनके लिये बिना मेघके अमृत-वृष्टि, बिना आयासके महोत्सव और बिना यत्नके निखिलाभके समान है। अतएव हे

देव भक्षो ! आपके पादपद्मद्वयके और मेरे बीच कभी विच्छेद न हो, यही मेरी प्रार्थना है; और कोई वर मैं नहीं चाहता। तब श्रीभैरवने कहा,—"हे देव महामते! तुम जो चाहते हो, वही होगा और तुम सब देवगणके वरदाता होगे।" दैत्यारिको इस वरदानसे अनुगृहीतकर कालभैरव, इन्द्रादिलोकमें भ्रमण करते हुए विचदाकर ब्रह्मादि देवगणका पद भी जिस काशीस्थित जीवगणके पीड़ाभागका एक भाग नहीं है, उस मुक्तिदायिनी वाराणसी नगरीमें आये। वाराणसीमें जटाधारी मुण्डितमुण्ड और दिगम्बर होकर रहना भी अच्छा, किन्तु अन्यत्र एकछत्र ससागर धरामण्डलका अधीश्वर होकर रहना भी अच्छा नहीं। वाराणसीमें भिक्षा अवलम्बन करके रहना अच्छा, किन्तु अन्यत्र लक्षाधिपति होकर रहना अच्छा नहीं; कारण लक्षपतिको गर्भमें प्रवेश करना पड़ता है, किन्तु भिक्षान्नभोजीको गर्भयन्त्रणा नहीं सहना होती। काशीमें आमलकी फलपरिमित भिक्षा भिक्षुओंको देनेसे वह सुमेरुतुल्य गुरु होती है। जो व्यक्ति दरिद्र गृहस्थको वर्षभोज्य अन्न प्रदान करते, वह जितने वर्षके लिये दान करते, उतने ही युग स्वर्गमें वास करते हैं। जो मनुष्य निरुपाय व्यक्तिको वर्षभोज्य दान करते हैं, उन्हें किसी कालमें क्षुधातृष्णा-जनित क्लेश भोगना नहीं पड़ता। काशीमें वास करनेसे जो फल उत्पन्न होता, वहां किसी व्यक्तिको वास करानेसे भी निकल वही फल होता है। जिसका नाम लेनेसे ब्रह्महत्यादि पापसमूह पापीजनको त्याग करते हैं, उस काशीको उपमा इस जगतमें किसके साथ दी जाय? इस तरह काशीक्षेत्रमें भीषणाकृति भैरवके प्रविष्ट होते ही ब्रह्महत्याने हाहाकार ध्वनिकर पातालमें प्रवेश किया। उनके हाथसे ब्रह्माका कपाल भूतलमें स्खलित हुआ। इससे भैरव सबके सामने परमानन्दसे नृत्य करने लगे। कालभैरवके नाना स्थानमें भ्रमण करनेपर भी उनके हाथसे कभी जो कपाल पतित नहीं हुआ था, काशीमें आते ही वह पतित हुआ और जिस ब्रह्महत्याने उन्हें कभी त्याग नहीं किया, वह क्षणकालमें विनष्ट हुई; अतएव काशी क्यों न दुर्लभ होगी? जो मनुष्य यावज्जीवन त्रिसन्ध्या "वाराणसी" "काशी" का महामन्त्र जपते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। जो मनुष्य दूरदेशान्तमें रहकर भी अविमुक्त महाक्षेत्रका नाम स्मरणकर प्राण त्यागते हैं, उनको भी दूसरी बार जन्म लेना नहीं पड़ता। जिनका चित्त सदा आनन्दकाननमें रत है, उस क्षेत्रका नाम सुननेसे उनको भी पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता। जो मनुष्य पापसम्भार वहन करके भी नियतचित्तसे रुद्रावासमें सदा वास करते,

वह भी मुक्ति लाभ करते हैं। जो मनुष्य महाश्मशानमें आकर दैवात् मृत्युको प्राप्त होते हैं, उनको फिर श्मशानमें शयन नहीं करना पड़ता। जो काशीस्थित कपाल-मोचन शिवका स्मरण करेंगे, उनके इस जन्म और पूर्व्व-पूर्व्वजन्मका पाप शीघ्र विनष्ट होता है। तीर्थप्रवर इस काशीमें आग-मनकर यथाविधि स्नानपूर्व्वक पितृ और देवगणका तर्पण करनेसे लोगोंकी ब्रह्महत्या दूरीभूत होती है। जो देहादिको अनित्य समझ वाराणसीमें वास करते हैं, अन्तकालमें भगवान् शङ्कर उन्हें परम-ज्ञान प्रदान करते हैं। हे विप्र! यह काशीपुरी साक्षात् रुद्रदेवकी अनिर्व्वाच्य परमानन्द मूर्त्ति है और यह शिवद्वेषियोंको अप्राप्य है। इस काशीके तत्त्वको मैं और अत्यन्त शिवभक्त जानते हैं। इस स्थानमें, योगबलसे योगीकी तरह जीवगण बिना क्लेशके मुक्तिलाभ करते हैं। यह काशी ही परमपद, परमानन्द और परमज्ञान स्वरूप है; इसीलिये हो मोक्षार्थियोंकी सेव्य है। जो मनुष्य काशीमें वास करके भी शैवगणके विरुद्धाचरण करते या इस पुरीकी निन्दा करते हैं, उन्हें कहीं भी सद्गति नहीं मिलती। फिर कालभैरवने कपालमोचन तीर्थको भक्तगणकी पापराशि भक्षण करनेके लिये सामने अवस्थित किया। इन पापभक्षणकारी कालभैरवके पास जा उनकी सेवामें रत होनेसे, शत शत पाप करनेपर भी उसे भय कहां? यह पाप-राशि और दुष्टगणका मनोरथ सम्पूर्णभा-वसे मर्द्दन करते हैं, इसलिये इनका नाम आमर्द्दक हुआ है। काशीवासियोंके कलि और कालभयको निवारण करते, इसलिये कालभैरव नामसे विख्यात हुए हैं। इनके भक्तोंके पास निदारुण यमदूत नहीं आ सकते, इसलिये इनका नाम भैरव हुआ है। इन कालभैरवके निकट, अग्रहायण मासकी कृष्णाष्टमीको उपवासी हो रात जागरण करनेसे, मनुष्य महापापसे मुक्तिलाभ करता है। इनका दर्शन करनेसे मनुष्यकुक्षिकृत समस्त अशुभ कर्म्म भस्मीभूत होते हैं। इन कालभैरवके पास जागरण करनेसे अनेक जन्म सञ्चित पापसमूह तत्क्षणात् विनष्ट होता है। मार्गशीर्ष मासकी कृष्णाष्टमीको विविध उपचारसे इनकी पूजा करनेपर मनुष्योंके वर्षभरका पाप दूर होता है। रवि मङ्गलवारको अष्टमी और चतुर्द्दशी तिथिको कालभैरवको यात्रा कर-नेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्तिलाभ करता है। जो मूढ़ व्यक्ति सदा काशीवासी कालभैरवके भक्तोंका विघ्न आचरण करते, वह दुर्गतिको प्राप्त होते हैं। जो जीव-गण, विश्वेश्वरके भक्तिमान् हो कालभैर-वके प्रति भक्ति नहीं करते, वह काशीमें पदपदपर बहुविघ्न प्राप्त होते हैं। कालोदक तीर्थमें स्नान, तर्पणकर कालरा-जका दर्शन करनेपर मनुष्य नरकसे पितृ-

पुरुषोंका उद्धार करते हैं। जो मनुष्य नित्य आठबार प्रदक्षिणा, करते हैं, वह वाङ्मनःकामसम्भूत पापमें लिप्त नहीं होते। साधक पुरुषोंके उस काशीपुरीमें छः महीनेतक इष्टदेवताका जप करनेसे भैरवाज्ञासे सिद्धिलाभ करते हैं। जो व्यक्ति वाराणसीवासी हो कालभैरवको नहीं भजते, उनका पाप शुक्लपक्षीय शशधरकी तरह दिन दिन वृद्धि पाता है। विविध बलि, पूजा और उपहार द्वारा कालभैरवकी पूजा करनेसे सर्व्वकामना सिद्ध होती है। काशीमें जो व्यक्ति प्रति चतुर्दशी, अष्टमी और मङ्गलवारको कालराजकी अर्च्चना नहीं करते, उनका पुण्य कृष्णपक्षके चन्द्रकी तरह क्षयको प्राप्त होता है। ब्रह्महत्या नाशकारी भैरवोत्पत्ति नामक यह पवित्र इतिहास जो सुनेंगे, उनका सर्व्वपापमोचन होगा। जो मनुष्य इस भैरवकी प्रादुर्भाव कथा सुनेंगे, वह कारागाररक्षित होनेपर भी सङ्कटसे मुक्त होते और कदापि विपन्न नहीं होते।

एकत्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंश अध्याय।

दण्डपाणि-प्रादुर्भाव।

अगस्त्यने कहा,—हे शिखिवाहन! अब हरिकेशकी उत्पत्तिकी कथा कहिये। वह हरिकेश कौन थे? किसके पुत्र थे, किस तरहकी कठोर तपस्या की थी और किस तरह वह महादेवके प्रिय हुए थे? यह महामति हरिकेश किस तरह काशीवासोंके हिताकाङ्क्षी दण्डनायक और अन्नदाता हुए थे? काशी-द्वेषी मनुष्योंके सदा भ्रमोत्पादनकारी सम्भ्रम और विभ्रम नामक गणद्वय किस प्रकार उनके अनुगत हुए? हे विभो! मेरी इच्छा है, कि यह सब सुनूं, कीर्त्तनकर मुझे अनुगृहीत कीजिये। स्कन्दने कहा,—हे ब्रह्मर्षे! कुम्भसम्भव! तुमने उत्तम ही प्रश्न किया है, इन दण्डपाणिकी कथा काशीवासियोंकी महाहितकारी है; इसके सुननेसे विश्वनाथकी कृपासे काशीवासका फल निर्व्विघ्न प्राप्त होता है। पूर्व्वकालमें गन्धमादन पर्व्वतपर सुकृती श्रीसम्पन्न रत्नभद्र नामक एक धार्म्मिक चूड़ामणि यक्ष वास करते थे। वह पूर्णभद्र नामक पुत्रलाभ कर पूर्णमनोरथ हुए थे। फिर वह यथाकाम विषयभोगकर चरम-वयसमें शान्तात्मा और प्रशान्तसर्व्वेन्द्रिय हो शैवयोगबलसे पार्थिव देह परित्यागकर शान्तिमय शिवत्वको प्राप्त हुए। फिर पिताके देहान्तपर महायशा पूर्णभद्रने पुण्यलब्ध अतुल विभवराशिके अधिकारी हो स्वर्गसाधन, गृहस्थाश्रमके भूषण, पितृलोगोंके परमपथ्य, संसारतापतप्त अङ्गके अमृतकणा और अनन्त क्लेशसागरके पतित मनुष्योंके पोतस्वरूप अपत्यलाभ भिन्न सब मनोरथको लाभ किया।

फिर पुत्रमुख अदर्शनसे, बालकको मधुरालापवर्ज्जित उनकी अट्टालिका सर्व्वजनदुर्लभ होनेपर भी उनके लिये अमङ्गलमय, दरिद्रहृदयकी तरह शून्य और प्रायः जीर्णारण्य बोध हुई और पथिकोंके लिये भी मानो प्रान्तरकी तरह सांय सांय करने लगी। हे कुम्भयोने! तब उन पूर्णभद्रने अतीव खिन्न हो यक्षिणीश्रेष्ठा कनककुण्डला नाम्नी यक्षिणीको बुलाकर कहा,—प्रिये! मेरी यह अट्टालिका आदर्शतलकी तरह सुन्दर है। गवाक्ष मुक्तामय, प्राङ्गणभूमि चन्द्रकान्त पाषाणनिर्म्मित, गृहकुट्टिम पद्मराग और नीलकान्त मणिप्रभासे उद्भासित, स्तम्भ प्रवालरचित और दीवार स्फटिकमयी है। इसके ऊपर पताका फर फर स्वरसे फहरा रही है, चारो ओर मणिमाणिक्य शोभा पाते हैं और अगुरुधूपगन्धसे चारो ओर आमोदित हो रहा है। इसमें बहुमूल्य आसन, रमणीय पर्य्यङ्क, सुचारु अर्गल और कपाट, दुकूलाच्छादित मण्डप, सुरम्य रतिशाला वाजिशाला और शत शत दासदासी विराजमान हैं। इसमें कहीं किङ्किणी बजती है,—शिखिगणके नूपुररवसे उत्कण्ठित हो कैका रव कर रही है,—पारावतकुल कूजन करते हैं,—शारी-शुक गा रहे हैं,—मराल मिथुन खिलते हैं,—चकोरचकोरी नाच रही हैं और माल्यगन्धसे आकृष्ट भ्रमर मधुर गुञ्जन कर रहे हैं। इसकी चारो ओर कर्पूरवाससे सुवासित वायु बह रही है। इस अट्टालिकामें क्रीड़ामर्कटके दन्ताग्रभागमें माणिक्यमय दाड़िम्बफल शोभा पाते हैं और दाड़िमीबीजभ्रमसे शुकपक्षिगण चञ्चुपुटसे मुक्ता ले रहे हैं। अहो कान्ते! यह हर्म्म्य उक्तरूपसे सुखसम्पन्न, द्वितीय लक्ष्मीभवनकी तरह धनधान्यसमृद्ध पद्मगन्धसे आमोदित होनेपर भी सन्तान बिना मुझे सुखकर बोध नहीं होता। अहो कनककुण्डले! इस विषयमें यदि तुम्हें उपाय मालूम हो, तो कहो, कि किस तरह पुत्रमुख निरीक्षण कर सकूंगा। हाय! अपुत्रकका जीवन धिक् है! हे प्रियतमे! पुत्र न होनेसे इस घरका सभी शून्य बोध होता है। इस सौधसौन्दर्य्यको धिक् है, इस धनसञ्चयको धिक् है और हमलोगोंके जीवनको धिक् है। पतिको इस तरह ऊंचे स्वरसे विलाप करते देख, वह पतिव्रता यक्षिणी कनककुण्डला, अन्तःसे दीर्घ निश्वास त्यागकर उनसे कहने लगीं,—प्राणकान्त! आप ज्ञानवान् होकर भी किसलिये खेद करते हैं? वह पुत्रलाभका उपाय मैं कहती हूं। आप विश्वस्तभावसे सुनिये। इस चराचरमें उद्योगी पुरुषको दुर्लभ क्या है? ईश्वरको चित्त समर्पण करनेसे मनोरथ पहले ही सिद्ध होता है। हे कान्ते! कापुरुषलोग ही दैवको कारण कहते हैं! किन्तु प्राक्तन कर्म्मके अतिरिक्त दैव एक स्वतन्त्र पदार्थ नहीं हैं। अतएव उन उन

कर्म्मशान्तिके लिये पुरुषकार अवलम्बनकर सब कारणोंके कारणस्वरूप ईश्वरके शरणागत होना ही मनुष्यको उचित है। हे प्रिय! शिवकी प्रति जिनकी भक्ति है, उनके स्त्री, पुत्र, धन, अलङ्कार, हर्म्म्य, गज, अश्व, सुख, स्वर्ग और मोक्ष यह समस्त हस्तगत कहनेपर भी अत्युक्ति नहीं होती। अखिल मनोरथ और अणिमा प्रभृति अष्टविध सिद्धि, तो उनके गृहद्वारमें दृश्यमान हैं, इसमें सन्देह नहीं। अधिक क्या, सर्व्वान्तर्य्यामी भगवान् नारायण भी इन श्रीकण्ठकी सेवाकर चराचर जगत्के पालनकर्त्ता हुए हैं। भगवान् शम्भुने ही ब्रह्माको सृष्टिकर्त्ता किया है। इन महादेवकी ही कृपासे इन्द्रादि देवगण लोकपाल हुए हैं। शिलादमुनिने निःसन्तान होकर भी मृत्युञ्जय पुत्र लाभ किया। श्वेतकेतु कालपाशसे बंधकर भी इन्हींकी अनुग्रहसे जीवित हुए थे और उपमन्युने क्षीरसमुद्रका आधिपत्य लाभ किया था। अन्धक नामक असुर इन्हींके प्रसादसे भृङ्गी हो गणपतिके पदको प्राप्त हुए थे। दधीचिमुनिने इन्हीं शम्भुकी सेवाकर युद्धमें वासुदेवको परास्त किया था। दक्ष इन्हीं महेश्वरकी पूजाकर प्रजापति हुए। दृष्टिपथके पथिक होनेपर महादेव ही वाक्यके अतीत और मनोरथके अगोचर उस मोक्षपदके देनेमें समर्थ हैं। सब जीवोंके अभीष्टदाता इन महेश्वरकी आराधना न करनेसे कोई किसी जगह किसी तरहसे भी अभीष्ट लाभ कर नहीं सकता। अतएव, हे प्रिय! यदि तुम्हें सर्व्वजनका हितकारी प्रियपुत्र लाभ करनेकी वाञ्छा हो, तो सर्व्वान्तःकरणसे उन्हीं शिवके शरणागत हो। पत्नीकी ऐसी बात सुनकर सङ्गीतज्ञ यक्षराज एकाग्रचित्तसे गीतविद्या द्वारा आराधनाकर कई वर्षमें भगवान् नादेश्वरके प्रसादसे उन्हीं पत्नीके गर्भसे उक्त पुत्रकामना प्राप्तकर सफलमनोरथ हुए। काशीमें नादेश्वर शिवकी उपासना करनेसे, कौन ऐसा व्यक्ति है, जो किसी अभीष्टको प्राप्त न हो? अतएव मनुष्यको भगवान् नादेश्वरकी सर्व्वप्रयत्नसे सेवा करना उचित है। हे द्विज! फिर कालक्रमसे उनकी पत्नीने गर्भवती हो पुत्र प्रसव किया। पिता पूर्णभद्रने उस पुत्रका नाम "हरिकेश" रखा। हे अगस्त्य! पूर्णभद्रने उन पुत्रका सुखदर्शनकर प्रफुल्ल हो बहुत धन वितरण किया और कनककुण्डला भी परमानन्दित हुई। मदनसुन्दर पूर्णचन्द्रानन वह बालक भी शुक्लपक्षके चन्द्रकी तरह प्रति क्षण वृद्धि पाने लगी। इस तरह आठ वर्षके होते होते वह शिवके सिवा और कुछ भी नहीं जानते;—पांशुक्रीड़ाके समय धूलिमय शिव निर्म्माणकर दूर्व्वाराजि द्वारा अति कौतुकसे उनकी पूजा करते; अपने बन्धुबान्धवोंको चन्द्रशेखर, भूतेश, मृत्युञ्जय, मृड़, ईश्वर, धूर्ज-

टि, खण्डपरशु, मृड़ानीश, त्रिलोचन, भर्ग, शम्भु, पशुपति, पिनाकी, उग्र, शङ्कर, श्रीकण्ठ, नीलकण्ठ, ईश, स्मरारि पार्व्वतीप्रिय, कपाली, भालनयन, शूलपाणि, महेश्वर, अजिनाम्बर, दिग्वास, स्पृष्टनीलिन्नमूर्द्धज, विरुपाक्ष और अहिनेपथ्य आदि शिवके नामसे वारंबार बुलाते थे। वह कानसे महादेवके सिवा और शब्द नहीं सुनते थे। उनके पदद्वय शिवमन्दिरके सिवा और कहीं नहीं जाते थे। उनके नयनयुगल रूपान्तर न देखते; रसना हरनामामृत सेवन करती थी। उनकी घ्राण, हरपादपद्मभिन्न दूसरा सुगन्ध आघ्राण न करती; उन्होंके कौतुककार्य्यमें नियत व्याप्त रहती; मन और किसीको नहीं जानता था। वह भक्ष्य और पेयद्रव्य महादेवको निवेदनकर खाते पीते थे। वह सभी अवस्थामें जगत्की शिवमय देखते थे;—गाना, जाना, शयन, स्वप्न, उपवेशन, खाना, पीना,—सब समय ही त्रिलोचनको निरीक्षण करते थे; और भाव नहीं ग्रहण करते थे। रातमें निद्रित हो, "हे त्रिनयन! कहां जाते हैं, क्षणकाल प्रतीक्षा करिये" कहते कहते सहसा जाग उठते। उनके पिता पूर्णभद्र पुत्रको ऐसी चेष्टा स्पष्ट देख उन्हें उपदेश करने लगे,—वत्स हरिकेश! तुम गृहकर्म्ममें रत हो। यह घोटक घोटकी, विचित्र वस्त्र दुकूल, आकरशुद्ध नानाजातीय रत्न, स्वर्णरौप्यादि बहुविध धन, महामूल्य रौप्य कांस्यमय पात्र, नानादेशीय पण्यद्रव्य, विचित्र चामर, नाना गन्धद्रव्य—यह सब और जो परिमित धान्यराशि देखते हो—सभी तुम्हारा है। हे पुत्र! तुम धनार्ज्जन विद्या सीखो। धूलिधूसरिततनु दरिद्रोंकी चेष्टाको परित्याग करो। फिर तुम सब विद्याका अभ्यास करके उत्तम भोगसुखसे दिन यापन करते हुए वृद्धवयसमें भक्तियोग अवलम्बन करना।" इस तरह बार बार पिता उन्हें शिक्षा देने लगे सही, किन्तु हरिकेशने कुछ न सुना। एक दिन वह महामति बालक पिताकी पद पदमें दोषदर्शी देख स्नानकर गृहसे निर्गत हुए। जाते जाते उन्हें दिग्भ्रम हुआ; तब सोचने लगे, कि हाय! क्यों मैंने मूढ़ बुद्धिवश गृह त्याग किया! कहां जाता हूं, कहां जाना मुझे श्रेय है, हे शम्भो! मुझे बताओ; मैं इस समय पितृपरित्यक्त हूं,—कुछ भी नहीं जानता। एक दिन पहले मैं पिताकी गोदमें उपविष्ट था, उस समय किसी साधु पुरुषके मुखसे आलापप्रसङ्गसे सुना था, कि पिता और बन्धुबान्धवगणने जिन लोगोंको परित्याग किया है, उन लोगोंकी गति शिवा वाराणसीके और कहीं नहीं है। जराक्रान्त व्याधिविकलित अनन्यगति मनुष्योंकी वाराणसीके सिवा और कहीं भी गति नहीं है। जो पद पदमें विपदसे अभिभूत

पापराशिसे आक्रान्त, दारिद्रदलित, संसारभयसे भीत, कर्म्मबन्धनसे बद्ध, श्रुति-स्मृतिहीन, शौचाचारवर्ज्जित योगभ्रष्ट, तपो-दानविरहित हैं, उन लोगोंकी गति और कहीं नहीं है;—वाराणसी ही एकमात्र गति है। बन्धुजनमें जिनका पद पदपर अपमान होता है, विश्वेश्वरका आनन्द-कानन ही उनका एकमात्र आनन्दधाम है। कारण उस जगह वास करनेपर विश्वना-थके अनुग्रहसे सदा आनन्दभोग ही होता है। उस महाश्मशानमें रहनेसे महेश्वरा-नलसे कर्म्म-बीज समुदाय भस्मीभूत हो जाता है, इस लिये ही वह अगतिकी परम गति है। बालक हरिकेशने इस तरह मन ही मन विचारकर, जहां शिवप्रसादसे पार्थिवतनु त्याग करनेपर फिर देहसम्बन्ध नहीं होता, उसी आनन्दवन अविमुक्तक्षेत्र वाराणसीमें जा तपस्या आरम्भ की। इसके उपरान्त कुछ काल बीतनेपर एक दिन भगवान शम्भु, आनन्दकाननमें प्रवेशकर पार्व्वतीको अपना उत्तम उद्यान दिखाने लगे,—देखो, देखो प्रिये! कैसी उद्यानकी शोभा है! इस उद्यानमें मन्दार, मालती, गन्धमल्लिका, चूत, चम्पक, करवीर, केतकी बकुल, कुरुवक, पाटल और पुन्नाग विक-सित हो कैसा दशदिक् आमोदित कर रहे हैं! इस नवमालिकाके परिमलसौरभमें आनन्दित भ्रमरगण गुञ्जन कर रहे हैं। किसी जगह रोलम्बमाला मालाकार भूत-लमें लम्बमान हुआ है। इस चञ्चल चन्दनवृक्षके शाखाग्रमें कोकिलकुल कलरव करते हैं। इस विशाल अगुरुवृक्षमें उत्कृष्ट-जातीय पक्षिगण मदमत्तभावसे बैठे हैं! इस नागकेशर शाखापर शाल-भञ्जिका चतुर्व्विनोदन करते हैं। उस रुद्राक्ष-वृक्षके छायातलमें किन्नर क्रीड़ा करते हैं, किन्नरीमिथुन गान्धारस्वरमें गा रही हैं। उस किंशुक-शाखापर शुकगण गानेमें मत्त हैं। उस कदम्बतरु निकरमें भ्रमरगण गुञ्जनमें रत हैं। यह सुवर्णवर्ण कर्णिकार, शाल, ताल, तमाल, हिन्ताल और लकुचराजि विराज रहे हैं। दाड़ि-मीफल विदीर्ण हो रहा है। लवलीलता, कदलीदल वायुसे आन्दोलित हो रहा है। सप्तच्छदके आमोदसे चतुर्दिक् आमोदित है। यह खर्ज्जूर, नारियल, जम्बीर, नारङ्ग, मधूक, शाल्मली, पिचुमर्द्द और मदन-वृक्षश्रेणी शोभा दे रही हैं। भील-रमणियोंकी गीतध्वनिकी तरह झिल्लीरव सुनाई देता है। उस सरोवरमें वराहदल क्रीड़ा करती हैं। वह मराल मरालीके गलनालोक्षित मृणालकी अभिलाष करते हैं। आनन्दमत्त चक्रवाकमिथुन क्रेङ्काका रव करते हैं। वकशावक चर रहे हैं, सार-सधारसी क्रीड़ा करती हैं। मत्तमयूरगण केकारवसे बुला रहे हैं। कारण्डव, कपि-ञ्जल और जीवञ्जीव-कुलके निनादसे दिक् निनादित हो रहे हैं। दीर्घिकाजलसञ्चारी

शीतल मारुत इसे बीजन कर रहा है। मृदुमन्द वायुसे आन्दोलित हो कह्लारकुसुम-परागने इसका चतुर्दिक् पिङ्गलवर्ण किया है। इस उद्यानका—विकसित पद्म ही मानो वदनमण्डल है, नील इन्दीवर ही मानो नयन हैं, तमालतरु ही मानो कबरी भार है, स्फुटितदाड़िम ही मानो दशन हैं, भ्रमर मानो नील कुटिल भ्रू रेखा हैं, शुकनासा ही मानो निज नासा और विशाल कूप ही मानो श्रवणरूपसे शोभा पाता है। कमलपुष्पका आमोद इसका निश्वासस्थलाभिषिक्त है। बिम्बफल इसके ओष्ठाधररूपसे विराजमान हैं। सुन्दर पद्मदल इसके रसनायमान, कर्णिका इसके भूषणायमान, कमनीय कम्बल इसके कण्ठायमान और वितुन्नक वृक्ष इसके स्कन्ध की तरह जान पड़ता है। चन्दनवृक्षस्थित सर्पराज इस उद्यानकी बाहुदण्डकी तरह, अशोक पल्लव आदि इसकी उङ्गलीकी तरह, केतकीपुष्प इसके नखकी तरह और दुर्द्धर्ष सिंह ही इसके वक्षःस्थलकी तरह बोध होता है। देखो, इस गण्डशैलने इसके उदरकी शोभा धारण की है, यह सलिलावर्त्त, नाभिकी तरह दिखाई देता है। यह वटवृक्ष जङ्घायुगलकी तरह बोध होता है। स्थलपद्म चरणस्थानीय है, देखो, इस मत्तमातङ्गसे इसकी गति प्रकाश होती है। यह कदलीदल ही कौशांशुकका काम करता है। नाना पुष्पमाला ही इसकी माला हो रही है। इस उद्यानमें कण्टकी वृक्ष नहीं है। हिंस्र जन्तुगण हिंसा त्यागकर इधर उधर घूम रहे हैं। चन्द्रकान्तशिलासे उपविष्ट तृणासार मानो मृगलाञ्छनका उपहास करता है। वृक्षके नीचे कुसुमराशि विकीर्ण होनेसे स्वर्गके तारे भी लज्जित हो रहे हैं। इसी तरह उद्यान-भूमि देवीको दिखाते दिखाते देवदेव वनमें प्रविष्ट हुए। देवदेवने कहा ;—अहो सर्वसुन्दरि, देवि ! यह जो आनन्दकानन देखती हो, यह मेरे प्रियता-विषयमें तुम्हारी अपेक्षा कुछ अंश भी न्यून नहीं है। इस जगह मरनेसे मेरी अनुग्रहसे जीवकी देह मुक्त होती है, और संसारमें फिर जन्म लेना नहीं पड़ता। मेरी आज्ञासे इस श्मशानकी प्रज्वलित अग्नि उन लोगोंका कर्मबीज भक्षात् करती है। हे गिरिराजसुते ! इस महाश्मशानमें जो कोई मरता है, उसे फिर गर्भयन्त्रणा सहना नहीं पड़ती। मुक्तिलाभ तत्त्वज्ञान सापेक्ष है ;—प्रमाण हो या तत्त्वज्ञानका क्षेत्र यह काशी हो, सब जगह ही तत्त्वज्ञान बिना मुक्तिलाभ नहीं होता। मैं इसीलिये काशीवासियोंको चरमकालमें तत्त्वज्ञानका उपदेश देता हूं, उस तत्त्वज्ञानके बलसे ही वह मोक्षलाभमें समर्थ हैं। जो काशीमें मरनेवालोंकी निन्दा करते हैं, वह पाप लेते और स्तुतिकारी जन पुण्यग्रहण करते

और इस जगह देह त्यागकर मुक्ति-प्राप्त होते हैं। हे देवि! कलिप्रभावसे मलिनबुद्धि और स्वभावतः चञ्चलेन्द्रिय मनुष्यको ब्रह्मज्ञान सम्भावना न देख मैं इस जगह उन्हें उपदेश देता हूं। योगिगण ऐश्वर्य्यमुग्ध होनेपर योगभ्रष्ट हो पतित होते हैं, किन्तु काशीमें पतित व्यक्तिको संसारमें और पतित होना नहीं पड़ता। बहुयोगसाधनसे एक जन्ममें तत्त्वज्ञान लाभ नहीं होता, किन्तु काशीमें देहान्त होनेसे एक ही जन्ममें मुक्ति मिलती है। हे गिरजे! जीव जिस तरह मेरी अनुग्रहसे इस अविमुक्त महाक्षेत्रमें मुक्ति पाते हैं, ऐसा और कहीं नहीं है। योगी बहुजन्म धारणकर योगाभ्याससे मुक्ति पाते अथवा नहीं भी पाते हैं; किन्तु काशीमें जीव, मरनेसे ही एकजन्ममें मुक्ति पाते हैं। कलिकालमें योग या तपस्या-सिद्धि नहीं होती, केवल न्यायपूर्व्वक अर्ज्जित-धन दानसे ही सद्यः परम सिद्धि होती। जप, यज्ञ, व्रत, तपस्या और देवपूजा मुक्तिका साधन नहीं है; एकमात्र दान ही मुक्तिका कारण है; कारण उससे काशी मिलती है। कलिकालमें विश्वेश्वर ही एकमात्र देवता हैं, वाराणसी ही एकमात्र मोक्षनगरी है, भागीरथी ही एकमात्र पुण्यप्रवाहिणी और दान ही एकमात्र विशिष्ट धर्म्म है। हे देवि! इस कालमें काशीस्थित उत्तरवाहिणी गङ्गा और मेरा विश्वेश्वरलिङ्ग—मुक्तिके यह दोनो कारण दानबलसे प्राप्त होते हैं। मेरे इस क्षेत्रकी सेवा करनेसे पुण्यवान् या पापी निश्चय ही मुक्ति लाभ करते हैं। उनका शतजन्मार्ज्जित पापपुण्य इस क्षेत्रके माहात्म्यपर कोई प्रभाव प्रकाश कर नहीं सकता। अतएव शत शत विघ्न-बाधासे आक्रान्त होकर भी मुमुक्षुजनको इसका त्याग करना उचित नहीं है। देवि! क्षेत्रसन्यासकर जो इस जगह वास करते, वह जीवन्मुक्त हैं, मैं उन लोगोंका विघ्नहरणकारी हूं। काशीके प्रति मेरा जितना अनुराग है; योगिगणके हृदयाकाशमें, कैलास या मन्दरपर्व्वतमें उतना अनुराग नहीं है। देवि! काशीवासी मनुष्य सदा मेरे ही गर्भमें वास करते हैं, अतएव अन्तकालमें मैं उन लोगोंका मोचन करता हूं; कारण यही मेरी प्रतिज्ञा है। देवि! मैं प्रलयकालमें तामसप्रकृतिके साहाय्यसे कालमूर्त्ति धर लीलाक्रमसे चराचर ग्रास करता हूं, किन्तु यत्नपूर्व्वक काशीकी रक्षा करता हूं। देवि! तपोधने! तुम और यह आनन्द-भूमि काशी—यह दोनो ही मेरे नितान्त प्रेमपात्र हैं। मैं सत्य कहता हूं,—मुझे काशी बिना कोई स्थान ही नहीं है; काशीके सिवा कहीं मुझे अनुराग नहीं है; काशीके सिवा किसी जगह मुक्ति नहीं है। इस ब्रह्माण्डमें काशीमें अवलीलाक्रमसे जैसी मुक्ति अवस्थित है, और जगह अष्टाङ्ग-

योगसे भी नहीं मिलती। देवदेवने देवीसे इस प्रकार कहते कहते बनमें अशोकतरुके नीचे देखा,—हरिकेश, निवातनिष्कम्प शरीरसे तपस्या कर रहे हैं। उनका स्नायु शुष्क और उसमें अस्थिचय आच्छादित हो रहा था; मांस, शोणित, वसा, वल्मीक-कीटने शोषण किया है; अस्थिमें मांस नहीं है शङ्ख, कुन्द, इन्दु, तुहिन और महाशङ्खकी तरह सब श्वेतवर्ण हो गया है; प्राणवायुको सत्त्वगुणने धर रखा है; आयुःशेष ही जीवन रक्षा करती है। श्वासप्रवास क्रियासे उन्हें जीवन उपलब्ध होता है; निमेष-उन्मेषसञ्चारसे ऐसा अनुमान होता है, कि जीव है; पिङ्गलताराशोभितनेत्रकी उज्ज्वल ज्योतिसे दिक् उज्ज्वलित हो रहा है। उनके तपस्यानलके शिखास्पर्शसे कानन-भूमि म्लान और सौम्यदृष्टिसुधावर्षणसे निखिल वृक्ष सिक्त हो गये हैं। उनको देखनेसे बोध होता है, कि निराकार निराकाङ्क्ष साक्षात् तपस्या ही मानो किसी आकाङ्क्षासे मनुष्य आकार धारणकर तपस्या करती हैं। उनकी चारोओर दलके दल कुरङ्गशावक घूम रहे हैं और केशरिगण नितान्त भीषणमुखसे चारोओर रक्षा करते हैं। तब देवीने उनकी यह अवस्था देख देवदेवसे कहा,—हे ईश! यह यक्ष आपमें ही चित्त, जीवन और कर्म्म समर्पणकर तीव्र-तपस्यासे देह शोषण करके आपके शरणागत हुए हैं; अतएव निजभक्त इन तपस्वीको वर दे अनुग्रह प्रकाश करिये। सुनकर महादेवने नन्दीका हाथ पकड़ पार्व्वती सहित वृषवाहनसे उतरकर, सदयचित्तसे ध्यान निमग्ननेत्र उन हरिकेशको हाथ द्वारा स्पर्श किया। तब यक्ष नेत्र खोल उद्यदादित्यसन्निभ भगवान् त्रिलोचनको सामने देखकर आनन्दगद्गद स्वरसे कहने लगी,—हे ईश! शम्भो! गिरिजेश! शङ्कर! त्रिशूलपाणि! शशिखण्डशेखर! आपकी जय हो। हे कपाली! आपके करकमलस्पर्शसे मेरी देह सुधासिक्त हुई। धीर, महातपस्वी उन भक्तकी ऐसी सरलतापूर्ण मधुर बात सुनकर भगवान् महेश्वरने आनन्दसे अपर्य्याप्त वर प्रदानकर कहा,—हे यक्ष! मेरे वरसे तुम मेरे इस प्रिय-क्षेत्रके दण्डधर हुए, तुम आजसे इस जगह स्थिर रह दुष्टका दमन और शिष्टका पालन करोगे। तुम्हारा नाम "दण्डपाणि" हुआ; यह समस्त उत्कटगण तुम्हारे शासनमें रहेंगे; मनुष्योंमें यथार्थ नामधारी सम्भ्रम और उद्भ्रम नामक गणद्वय सदा तुम्हारा अनुसरण करेंगे। तुम काशीवासियोंके गलेमें नीलरेखा, करमें भुजगकङ्कण, कपालमें नयन, परिधानमें कृत्तिवास, वृषवाहनमें गमन, वामभागमें वामनयना, मस्तकमें पिङ्गल जटाजूट, सर्व्वाङ्गमें भस्म और चन्द्रकला विधानकर अन्तिमकालका भूषा सम्पादन करोगे। तुम काशी-

वासियोंके अन्नदाता, प्राणदाता, ज्ञानदाता और मस्भु खनिर्गत उपदेशबलसे मुक्तिदाता हो उनको अचल सत्त्वमति विधान करोगी। हे पिङ्गल! तुम पापियोंको बहु विघ्न प्रदानकर भ्रान्ति उत्पादनकर क्षेत्रसे विताड़ित करोगी और भक्तोंको क्षणमें दूरदूरान्तरसे लाकर मुक्तिप्रदान कराओगी। हे यक्षराज! यह सम्पूर्ण क्षेत्र तुम्हारे अधीन हुआ, यहां मेरे भक्तमात्र आगे तुम्हारी पूजाकर तब मेरी अर्चना करेंगे; नहीं तो मुक्ति न मिलेगी। हे दण्डनायक! तुम इस पुरीके अन्नवस्त्रदाता हो, त्रिलोचन होके रहोगी और काशीके शत्रु दुष्टलोगोंका उच्चाटनकर सदानन्दसे इस पुरीकी रक्षा करोगी। हे पूर्णभद्रात्मज! तुम्हारा मनोरथ-तरु फलित होगा; भक्ति विषयमें तुम ब्रह्मादि देवगणोंके भी उदाहरणपात्र होगी। हे पूर्णभद्रसुत! दण्डनायक! पिङ्गल! त्र्यक्ष! यक्ष! हरिकेश! हे काशीवासियोंके अन्नज्ञानमोक्षदाता! तुम मेरे सब गणोंके प्रधान होगी। मुझमें भक्तियुक्त होनेपर भी मनुष्य तुम्हारी भक्ति बिना काशीमें वास न करने पावेंगे। तुम देव, मनुष्य, प्रमथसे आगे पूजनीय होगी। ज्ञानवापी-तीर्थमें स्नानादिकर जो तुम्हारी आराधना करेंगे, वह मेरी सामान्य कृपाके बलसे पूर्णमनोरत होंगे। हे दण्डपाणि! तुम मेरे सामने दक्षिण ओर दुष्टको दण्डविधान और शिष्टको अभय दान करते हुए अवस्थान करो। स्कन्दने कहा,—हे विप्र! भगवान् गिरीश दण्डपाणिको ऐसा वर दे वृषराजपर चढ़ आनन्दकाननको गये। तबसे यक्षराज दण्डनायक, दुष्टोंसे वाराणसी पुरीका यथाविधि पालन करते हैं। मैंने उनके मर्य्यादाकी रक्षा नहीं, की इसलिये उनके कोपसे यहां वास करता हूं। हे मुने! मैं समझता हूं, तुम भी उनकी प्रतिकूलतासे काशीक्षेत्र त्याग करनेपर वाध्य हुए हो। हे द्विज! हरिकेश यदि किसी मनुष्यका अल्पमात्र भी व्यतिक्रम देखते हैं, तो काशीमें उसका रहना और भाग्यमें सुख अति दुर्घट है। दण्डपाणिकी आराधना न करनेसे किसी तरह भी काशीमें सुखप्राप्तिकी सम्भावना नहीं है मैं काशीमें जानेके पहले ही इस तरह उनको भजता हूं, "हे रत्नभद्रसुतपूर्णभद्रपुत्रश्रेष्ठ! यक्ष! शिवप्राप्तिके लिये निर्व्विघ्न मेरा काशीवास विधान करिये। यक्ष पूर्णभद्र धन्य हैं; काञ्चनकुण्डला भी धन्या हैं; हे महामते! जिनके जठरमें तुमने (दण्डपाणिने) जन्म ग्रहण किया है। हे यक्षपते! तुम्हारी जय हो। हे पिङ्गललोचन वीर तुम्हारी जय हो; हे पिङ्गजटाधार! दण्डमहायुध! तुम्हारी जय हो। हे अविमुक्त महाक्षेत्रके सूत्रधर! उग्रतापस! हे दण्डनायक! भीमास्य! हे विश्वेश्वरप्रिय। तुम्हारी जय हो, हे सौम्यके प्रति सौम्य! हे भीष-

णके प्रति भीषण ! हे चौरस्थ पापचारीके कालान्तक ! हे महामहाप्रिय ! हे प्राणद ! हे यक्षेन्द्र ! हे काशीवासियोंके अन्न और मुक्तिदायिन् तुम्हारी जय हो । हे महारत्नरश्मिमाला स्फुरितविग्रह ! हे अभक्तगणके महासम्भ्रान्तिजनक और महोद्भ्रान्तिप्रदायक ! हे भक्तगणके सम्भ्रमोद्भ्रान्तिनाशक ! हे चरमकालीन भूषाचतुर ! हे ज्ञाननिधिप्रद ! तुम्हारी जय हो । हे गौरीचरणसरोजमधुप ! मोक्षदानैकविचक्षण तुम्हारी जय हो ।" काशीलाभके लिये यह पवित्र यक्षराजाष्टक मैं नित्य त्रिसन्ध्या पाठ करता हूं । हे मैत्रावरुणि ! जो बुद्धिमान् मनुष्य इन दण्डपाणिके अष्टकको पढ़ेंगे, वह कभी विघ्नजातसे आक्रान्त न होंगे, और काशीवासका फल पावेंगे । यह दण्डपाणिकी प्रादुर्भाव कथा सुनने या पढ़नेसे यदि इस जन्ममें न हो, तो दूसरे जन्ममें काशीलाभ होगा । यह पवित्र दण्डपाणिप्रादुर्भाव नामक अध्यायका जो व्यक्ति पाठ करते या कराते हैं, उन्हें विघ्नबाधासे आक्रान्त नहीं होना पड़ता ।

द्वात्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंश अध्याय ।

ज्ञानवापी-वर्णन ।

अगस्त्यने कहा,—हे स्कन्द ! स्वर्गवासी देवगण भी ज्ञानवापीकी हृदसे ऊपर प्रशंसा करते हैं, अतएव सम्प्रति उस ज्ञानोद तीर्थकी महिमा कहिये । तब स्कन्दने कहा,—हे मुने महाप्राज्ञ कुम्भयोने ! मैं इस समय उसकी कलुषनाशिनी उत्पत्तिकी कथा कहता हूं, सुनो । हे मुने ! पहले जब दैवयुगमें इस आवर्त्तमान संसारमें मेघ वृष्टि नहीं करता था ; नदियोंकी उत्पत्ति नहीं थी ; स्नानदानादि कार्य्यमें जलकी जरूरत नहीं थी ; लवण और क्षीरसमुद्रमें केवल जल दिखाई देता और पृथिवीकी किसी किसी जगह मनुष्यसञ्चार वर्त्तमान था, ऐसे समय दिक्पाल ईशान अपनी इच्छासे इधर उधर विचरण करते करते समस्त कर्म्मबीज जबरक्षेत्र, महानिद्रामें निद्रित जीवगणके प्रतिबोधक, संसारसमुद्रावर्त्तमें पतित जन्तुकी अवलम्बनतरणी, यातायातके खिन्नजीवके विश्राम-भवन, बहुजन्मसञ्चित कर्म्मसूत्रके छेदनास्त्र, निर्व्वाणलक्ष्मीधाम, सच्चिदानन्दनिलय, परब्रह्मरसायन, सुखसन्तानजनक और मोक्षसाधन सिद्धिप्रद महाश्मशान श्रीआनन्दकाननमें आये । वहां आकर जटिल ईशानने त्रिशूलके विमल रश्मिजालसे आकुल हो देखा, ब्रह्मा और विष्णुके अहमहमिकासे प्रादुर्भूत ज्योतिर्मालामण्डित महालिङ्ग विराजमान हैं । अमर, सिद्ध, योगी, ऋषि और प्रमथगण निरन्तर उसकी अर्च्चना करते हैं । गन्धर्व्व गा रहे हैं, चारणगण स्तव करते हैं ; अप्सरा नाच

रही हैं; नाग न्या मणिमय प्रदीप जलाकर नीराजना करती हैं; विद्याधरवधू और किन्नरीगण त्रिकालीन मङ्गल करती हैं और देवनारीगण इधर उधर चामर व्यजन करती हैं। उस समय उन लिङ्गको देखकर ईशानको इच्छा हुई, कि मैं कलस द्वारा शीतल जलसे इन महालिङ्गको स्नान कराऊंगा। तब रुद्रमूर्त्ति ईशानने त्रिशूल द्वारा दक्षिण भागमें कुछ दूर एक कुण्ड खोदा। हे मुने! उस समय इस कुण्डसे पृथिवीके परिमाणकी अपेक्षा दशगुण अधिक जल निकला। उस जलसे यह वसुधा आवृत हो पड़ी। हे कुम्भयोने! तब उन ईशानने, जीवोंके अस्पृश्य, सज्जनचित्तकी तरह स्वच्छ, आकाश मार्गकी तरह ऊंचा, ज्योत्स्नाकी तरह धवल, शिव नामकी तरह पवित्र, अमृतवत् सुस्वादु, शुभाङ्गकी तरह सुखस्पर्श, निष्पाप-जनकी तरह धीर गम्भीर, पापियोंकी तरह चञ्चल, निर्ज्जितपद्मगन्ध, पाटलपुष्पगन्धि, दृशकवृन्दके नयनमनोहारी, अज्ञानतापतप्त जीवका स्निग्धताकारी, पञ्चामृत स्नानकी अपेक्षा अति फलदायी, श्रद्धापूर्व्वक स्पर्श करनेसे हृदयमें लिङ्गत्रितयका जनक, अज्ञानतिमिरके सूर्य्य समान, ज्ञानदानके निदान, उमास्पर्शकी अपेक्षा विश्वेश्वरके अति सुखकारी अवभृत स्नानसे भी अति शुद्धिविधायक, शीतल, जाड्यापहारी उस जल द्वारा सहस्र धारा कलसमें लेकर हृष्टचित्तसे सहस्र बार उन लिङ्गको स्नान कराया। फिर विश्वलोचन विश्वात्मा भगवान्ने प्रसन्न हो रुद्रमूर्त्तिधारी ईशानसे कहा,—हे सुव्रत ईशान! अति प्रीतिकर, औरोंसे गुरुतर तुम्हारे इस कार्य्यसे मैं प्रसन्न हुआ हूं; तुम क्या वर चाहते हो, बोलो, तुम्हारे लिये अदेय मेरा कुछ भी नहीं है। यह सुनकर ईशानने कहा,—"हे देवेश! यदि प्रसन्न हुए हैं और मैं यदि आपके वरलाभके योग्यपात्रोंमें गण्य हूं, तो हे शङ्कर! यह तीर्थ अतुलनीय और आपके नामसे प्रसिद्ध हो।" विश्वेश्वरने कहा, त्रिभुवन और भूर्भुवःस्वर्लोकमें जितने तीर्थ हैं, उन सभोंमें यह प्रधान और शिवतीर्थ नामसे विख्यात होगा। शिवशब्दार्थज्ञ पण्डितगण शिवशब्दका अर्थ "ज्ञान" कहते हैं, इस तीर्थमें वह ज्ञान मेरे महिमबलसे सलिलभावसे द्रवीभूत हुआ है, अतएव यह तीर्थ "ज्ञानोद" नामसे त्रिलोकमें विख्यात हुआ! इसके दर्शनसे सर्व्वपाप मोचन, स्पर्शनसे अश्वमेधका फल लाभ और आचमन और स्पर्शनसे अश्वमेधका फललाभ और आचमन स्पर्शनसे राजसूय और अश्वमेधका फल प्राप्त होगा। फल्गुतीर्थमें स्नान और पितृतर्पण करनेसे मनुष्यको जो फल होता है, इस तीर्थमें श्राद्ध करनेसे, वही फल होगा। गुरुवार पुष्यानक्षत्रयुक्त शुक्लपक्षीय अष्टमीको व्यतीपात योग होनेपर यदि कोई

इस तीर्थमें श्राद्ध करें, तो वह गया श्राद्धको अपेक्षा कोटिगुण फल लाभ करेंगे पुष्करतीर्थमें पितृतर्पणसे जो पुण्य होता है, इस तीर्थमें तिलतर्पणसे उसकी अपेक्षा कोटिगुण पुण्य होगा। कुरुक्षेत्रके रामह्रदमें सूर्य्यग्रहणके समय पिण्डदानसे जो फल होता है, इस तीर्थमें प्रत्यह वही फल लाभ होगा। जिनके पुत्र इस जगह पिण्डदान करेंगे, वह प्रलयकालमें यावत् शिवलोकमें वास करेंगे। अष्टमी और चतुर्द्दशीको उपवासकर इस तीर्थमें प्रातःस्नान और इसका जलपान करनेसे, मनुष्यका हृदय शिवमय होगा। जो एकादशीको उपवासकर इसका तीन गण्डुष जल पान करें, निश्चय ही उनके हृदयमें शिवलिङ्गत्रय उत्पन्न होंगे। विशेषतः सोमवारको जो व्यक्ति इस शिवतीर्थमें स्नान और ऋषि, देव, पितृतर्पणकर यथासाध्य दान दे षोड़शोपचारसे विश्वेश्वरकी पूजा करेंगे, उनका मनोरथ पूर्ण होगा। यथासमय सन्ध्या न करनेसे जो पाप होता है, इस तीर्थमें सन्ध्योपासना करनेसे वह पाप तत्क्षणात् नष्ट होगा और ब्राह्मण ज्ञान लाभ करेंगे। इसका नाम शिवतीर्थ है, यही शुभज्ञानतीर्थ है, इसीका नाम तारकतीर्थ और यह निःसन्देह मोक्षतीर्थ हुआ। इस तीर्थका स्मरण करनेसे भी पापराशि बिनष्ट होगी, इसका दर्शन, स्पर्शन, जलपान और इसमें स्नान करनेसे मनुष्य चतुर्व्वर्ग फलको प्राप्त होंगे। इसके जल दर्शनसे डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रेत, बेताल, राक्षस, ग्रह, कुष्माण्ड, खिटिङ्ग, कालकर्णी, बालग्रह, ज्वर, अपस्मार, विस्फोट प्रभृति, समुदय शान्त होंगे। जो मनुष्य इस तीर्थके जल द्वारा शिवलिङ्गको स्नान करावेंगे, सर्व्वतीर्थजल द्वारा स्नान करानेसे जो फल होता है, वह भी वही फल पावेंगे। ज्ञानरूपमें इस जगह द्रवमूर्त्ति धारणकर जड़ताका नाश और ज्ञानका उपदेश करूंगा। भगवान् शम्भु इस तरह वरदान दे वहीं अन्तर्हित हुए; त्रिशूलधारी, जटिल, ईशान भी अपनेको कृतार्थ जान वह परम जल पानकर परम ज्ञानलाभकार सुखी हुए। स्कन्दने कहा,— हे कुम्भयोने! पहले इस ज्ञानवापीमें एक विचित्र घटना हुई थी; उस विषयका इतिहास कहता हूं, सुनो। पूर्व्वकालमें इस काशीमें हरिस्वामी नामक एक ब्राह्मण थे। उनकी एक असामान्यरूपलावण्यवती कन्या थी। वह कन्या चतुःषष्टि कलामें, शील और सब लक्षणसे भूषित थी। उसके कण्ठस्वरसे कोकिल परास्त होता था। क्या नारी, क्या अमरी, क्या किन्नरी, क्या विद्याधरी, क्या नागकन्या, क्या गन्धर्व्वकन्या, क्या असुर कन्या, कोई भी उसके समान नहीं थी। उसका केश देख मालूम होता था, मानो अन्धकारने

सूर्य्यके भयसे उसके मस्तकमें आश्रय लिया है। मुख देखनेसे मालूम होता, शशि अमावस्याके भयसे उसके मुखके शरणागत हुआ है और चण्डमरीचिके भयसे दिनमें भी त्याग नहीं करता। उसके भ्रूयुगलच्छलसे भ्रमरमाला मानो गण्डपत्र-लतामें उत्पतनपतनगतिका अभ्यास करती है। उसके रमणीय नयनसे खञ्जनद्वय विचरण कर अपनी इच्छासे सदा शारदी प्रीति भोग करते थे। उसकी दन्तपंक्ति-च्छलसे पञ्चबाणने मानो स्वर्णरेखासे अङ्कित कर रखा है, कि चन्द्रमें इतनी कला नहीं। विद्रुम कान्तिविजयी उसके सुचारु ओष्ठधर देखनेसे मनमें होता, मानो मदनराजके प्रासादका पताका फहरा रहा है। उसके कण्ठके तीनरेखाच्छलसे मानो कालदेव शपथ करके कहते हैं, कि यह रेखा नहीं स्वर्ग, मर्त्त्य और पाताल—यह तीनो भुवन रमणीके कण्ठमें हैं। उसके स्तनद्वय देखनेसे मममें होता, मानो राजा मनसिजके अमूल्यरत्नभाण्डारपूर्ण दो पट-मण्डप शोभा पाते हैं। विधाताने उसको अनङ्गदेवका आयतन ज्ञान करके ही मानो रोमावलीच्छलसे उसके मध्यदेशमें ऊर्द्ध्वयष्टि विधान किया था। उसकी नाभिगुहामें पतित होकर कन्दर्प अङ्गहीन हुआ, इसीसे वह वहां बैठकर फिर अङ्गलाभके लिये घोरतर तपस्या कर रहा है। उसके गुरु नितम्बने मन्मथमहामन्त्रदीक्षासे जगतमें किस युवकको दीक्षित नहीं किया था? उसके उत्तस्तन्वसे किसका हृदय क्षुब्ध नहीं होता था। उसके सच्चरित्रसे कौन मुनिजनका कुचरित्र स्तम्भित नहीं होता था। उस मृगनयनाके चरणाङ्गुष्ठनखकी ज्योतिकी प्रभासे किसकी तत्त्वज्ञानजनित प्रभा विदूरित नहीं हुई थी? हे मुने! ऐसी रूपगुणसम्पन्ना वह कन्या प्रतिदिन ज्ञानवापीमें स्नानकर एकाग्रमनसे शिव-मन्दिरमें सम्मार्ज्जन प्रभृति सब कर्म्म करती थी। उसके पादप्रतिबिम्बका रेखारूप नव-तृणाङ्कुर भक्षण करने पावें समझकर काशीस्थ युवकोंके चित्तहरिण उसे छोड़ वनमें नहीं जाते थे। युवकरूप मधुपश्रेणी उसका मुखपङ्कज त्यागकर, सुरभि कुसुम-भभार भरित होनेपर भी लतान्तरकी सेवा नहीं करते थे। वह कन्या आकर्णान्तायत-लोचना होनेपर भी किसी पुरुषका मुख नहीं देखती थी; सुन्दर कर्णयुगलधा-रिणी होनेपर भी किसीकी बात नहीं सुनती थी और उसके विरहसे कातररूप मोहसम्पन्न पुरुषगणके छिपे छिपे व-हकी प्रार्थना करनेपर भी वह विवाहब-न्धनकी अभिलाषिणी नहीं होती थी। उ-सके पिता युवकगणद्वारा बहु धनदानपूर्व्वक प्रार्थित होनेपर भी उन लोगोंके हाथ सम्प्रदान नहीं करने पाते थे। इसलिये कुमारी सुशीला ज्ञानोदतीर्थकी सेवा वश बाहर भीतर समस्त जगत्को ही लिङ्गमय

देखती थी। एक दिन किसी विद्याधर उसे रातके समय गृहाङ्गणमें निद्रित देख उसके रूपलावण्यसे मोहित हो उसी ही आकाशपथमें जाने लगा, उसी समय नरकपालभूषित, वसारुधिरलिप्त, सर्व्वाङ्ग शस्त्रधारी, पिङ्गलनेत्र, भीमाकृति विद्युन्माली नामक एक राक्षस उपस्थित हो कहने लगा, अरे विद्याधरकुमार! बहुत दिनोंपर तुझे देख पाया है। आज तुझे इस नारी सहित यमसदनको भेजता हूं। राक्षसकी बातसे वह कन्या व्याघ्रभूत मृगीकी तरह अतित्रस्त हो कदलीपत्रकी भांति कांपने लगी। यह बात कहकर उस राक्षसने त्रिशूल द्वारा विद्याधरपर प्रहार किया। महाबलपराक्रान्त, मधुमूर्त्ति विद्याधरकुमारने भी उसके त्रिशूलाघातसे विदीर्णवक्षःस्थल हो, उसी समय मनुष्यवसामांससे मत्त उस विद्युन्माली राक्षसको वज्रतुल्य मुष्टिप्रहारसे आघात किया। उस मुष्टिप्रहारसे चूर्णित शरीर हो राक्षस वज्राहत महीधरकी तरह भूतलमें गिर पञ्चत्वको प्राप्त हुआ। विद्याधरने भी शूलाघातसे विकल हो घूर्णितनयन गद्गदस्वरसे कहा—"प्रिये! सुधा लाया हूं; दान करो" यह अर्द्धोच्चारित बात उच्चारण करते करते प्रियाको स्मरणकर प्राण त्याग किया। उस कन्याने भी उसका स्पर्श-सुख अनुभवकर उसको ही पति समझ देहको अग्निसात् किया। एक ओर राक्षस लिङ्ग-

त्रयशरीरिणी उस कन्याके सान्निध्य वश मरनेके उपरान्त दिव्य देह धारणकर स्वर्गवासी हुआ, दूसरी ओर विद्याधरतनयने युद्धमें प्राणपणकर प्रियाको स्मरण करते हुए प्राणत्याग किया था इससे मलयकेतुके औरसमें जन्म लिया और वह कुमारी भी विद्याधरपुत्रका ध्यान करते करते विरहानलमें देह अर्पणकर कर्णाट देशमें पुनर्जन्मभागिनी हुई। कालक्रमसे मलयकेतुके पुत्र उस मङ्गलसुन्दर माल्यकेतुने उसी कन्या कलावतीसे विवाह किया। सहजसुन्दरी कलावती जन्मान्तरीण संस्कारवशसे शिवलिङ्गकी अर्चनामें रत हुईं, चन्दनलेपन त्यागकर अङ्गमें विभूति धारण किया और मणिमाणिक्य, मुक्ता, पुष्पराग की अपेक्षा रुद्राक्ष-मालाको ही उत्तम नैपथ्य समझने लगीं। पतिव्रता कलावतीने दिव्य भोग सुखसे दिन बिता क्रमसे माल्यकेतुके औरससे तीन सन्तान लाभ किया। एक दिन उत्तरदेशीय किसी चित्रकरने आकर राजा माल्यकेतुको एक विचित्र चित्रपट दिखाया। राजाने वह चित्रपट ले कलावतीको समर्पण किया। कलावती उस रमणीय चित्रपटमें निर्जनमें निज प्राण देवता विश्वनाथको बारंबार देखते देखते आनन्दभरे समाविष्ट योगिनीकी तरह आत्म विस्मृत हुईं। फिर नयन खोलकर क्षणकाल चित्रपटपर नयनपातकर तर्ज्जनी उंगलीके प्रयोगसे आप ही आप कहने

लगीं ;—यह लोलार्कके पास असिनदी-सङ्गम अङ्कित है, आदिकेशवके पदतलमें यह सरिद्वरा वरणानदी दिखाई देती हैं। स्वर्गके देवता भी जिनके स्पर्शके लिये लालायित हैं, वह स्वर्गतरङ्गिणी यह उत्तर ओर प्रवाहित हैं। सज्जनके मुक्तिदानके लिये जिसे वेदान्तशास्त्रमें अलक्ष्य अव्यर्थ लक्ष्मी कहती हैं ; जहां मरनेसे मङ्गल और जीवन सार्थक होता है ; जिसके सामने स्वर्ग तृणतुल्य है, यति लोग जहां मृत्युकी कामनाकर अपनी विभवराशि वितरणकर कन्दमूलाशी हो व्रत अवलम्बनसे अवस्थान करते हैं ; जहां स्वयं शङ्कर गङ्गामार्गके मृत मनुष्योंको बुलाते और निज मौलिस्थ चन्द्रलोकका मुक्तिमार्ग दिखा दुस्तर संसारसागरसे उत्तीर्ण करते हैं ; जहां कर्णधार पाकर नरगण मृत होकर भी अमृतायमान होते हैं, जहां करुणानिलय स्वयं महेश्वरका कानमें जप होता है संसारपारका पन्थ अति सुलभ और बहुजन्मसञ्चित प्रभूत पुण्यबलसे मनुष्य अन्तकालमें भवतापहारी भवानीपतिसे कर्णजप पाता है ; जहांके प्रभावसे विशालबुद्धि मनुष्य शैवसंन्यास अवलम्बनकर यमको भी तृणज्ञान करते हैं, जहां राजर्षिवर हरिश्चन्द्रने निजपत्नीके साथ अपनी देहको तृणवत् जान बेच डाला था। जहांकी सैकत-भूमि पानेके लिये वैकुण्ठवासी भी कोमल शय्याको तरह वाञ्छा करते हैं ; जहां जीवगण कोटि कोटि जन्मसञ्चित कर्म्मसूत्र बन्धन उच्छेदनकर मुक्तिलाभ करते और सत्यलोकवासी भी मृत्युके लिये निरन्तर जिसकी प्रार्थना करते रहते हैं, वह मणिकर्णिका यह हैं। अन्यत्रकृत पाप काशीदर्शनसे नष्ट हो जाता है, किन्तु काशीमें पाप करनेसे दारुणयातना भोगना पड़ती है ; वह यन्त्रणा जिस जगह श्रीकालभैरव देते हैं, वह यही फुलस्तम्भ है। जहां भैरवके हाथसे ब्रह्माका कपाल पतित हुआ था, यह वही पवित्र कपालमोचन तीर्थ है। जहां नरगण स्नानकर ऋणत्रयसे मुक्त होते हैं, यह वही विशोधन ऋणमोचन तीर्थ है। यह भगवान् ओङ्कारेश्वर विराजमान हैं.—इस जगह अकार, उकार, मकार, नाद और विन्दु यह पञ्चात्मक प्रणवाख्य परमब्रह्म पञ्च आयतनको पञ्च मूर्त्तिसे नित्य प्रकाश पाते हैं। यह स्नानमात्रसे मनुष्यकी जठरयातना-निवारिणी मत्स्योदरी तीर्थ है। देशान्तरस्थित निज भक्तके त्रिलोचनत्वविधाता यह भगवान् कृपालु त्रिलोचन हैं। यह काशेश्वरदेव हैं—सज्जनके अभीष्टदाता, दुर्व्वासामुनिके भी महोच्चकामनापूरयिता हैं, इनमें स्वयं महेश्वर भक्तजनोंकी कामनासिद्धिके लिये लीन हुए हैं, इसीसे इनका नाम स्वलीन हुआ। वाराणसीमें क्षेत्राभिमानी जो महादेव शास्त्रमें पठित हैं, यह विचित्र प्रासाद उन्हींका दिखाई देता है। अद्धा-

पूर्व्वक दर्शन करनेसे आजन्मब्रह्मचर्य्यके फलदाता यह स्कन्देश्वर देव हैं। यह सर्व्वसिद्धिदाता विनायकेश्वर देव हैं; इनको सेवा करनेसे विघ्नकारक विनायकगण दूर भागते हैं। यह साक्षात् मूर्त्तिमती वाराणसी देवी हैं, इनके दर्शनसे मनुष्यको फिर गर्भयातना भोगना नहीं पड़ती। यह पार्व्वतीश्वर लिङ्गका वृहत् मन्दिर है; इस जगह मोक्षदाता भगवान् देवदेव गौरी सहित नियत अवस्थान करते हैं। यह महापातकनाशन भगवान् भृङ्गीश्वर हैं; इन लिङ्गकी सेवासे भृङ्गी जीवन्मुक्त हुए थे। यह देखती हूं, भगवान् चतुर्व्वक्त्रधारी चतुर्व्वेदेश्वर हैं; इनके दर्शनसे ब्राह्मण वेदपाठका फल पाते हैं। जिनकी अर्चना करनेसे मनुष्यको सब यागफल लाभ होता है, यह वही यज्ञस्थापित यज्ञेश्वर लिङ्ग हैं। जिनके दर्शनसे अष्टादश विद्यासे मनुष्य अभिज्ञ होता है, यह वही अष्टादश अङ्गुलि परिमित पुराणेश्वर लिङ्ग हैं। यह स्मृतिप्रतिष्ठित भगवान् सर्व्वशास्त्रेश्वर हैं; इनके दर्शनसे स्मृतिपाठका फल मिलता है! यह सर्व्वजाड्यहारी सारस्वतलिङ्ग हैं। यह सद्योमुक्तिप्रद सर्व्वतीर्थेश्वर लिङ्ग हैं। इन प्रेतेश्वर लिङ्गका विविध रत्नखचित परमसुन्दर अति विचित्र मण्डप है। यह मनोहर सप्तसागर लिङ्ग हैं। इनके ही दर्शनसे मानव सप्तसमुद्रस्नानका फल पाते हैं! पूर्व्वयुगमें सप्तकोटि महामन्त्रसे स्थापित मन्त्रजाप्यके फलदाता यह श्रीमन्त्रेश्वर हैं। त्रिपुरेश्वर लिङ्गके सामने त्रिपुरारिका परम प्रिय यह त्रिपुरख्यात महत्कुण्ड विद्यमान है। बाण राजाके द्विभुज होनेपर भी उनके सहस्र बाहु होनेके निदानभूत और उनके पूज्य यह बाणेश्वर लिङ्ग हैं। यह प्रह्लादकेश्वरके पूर्व्वभागमें वैरोचनेश्वर हैं। यह बलिकेशव और यह आदि केशव हैं। इनके पूर्व्वभागमें यह आदित्य केशव हैं। यह भीष्मकेशव हैं, यह इल्लावधेश्वर हैं। उनके पूर्व्वभागमें यह आदिगदाधर हैं। यह भृङ्गकेशव हैं। यह वामनकेशव, नर, नारायण, यज्ञवाराहकेशव, विदारनरसिंह और गोपीगोविन्द देव हैं। प्रह्लाद जिनके प्रसादसे इन्द्रत्वपद प्राप्त हुए, उन लक्ष्मीनृसिंहका यह रत्नकेतन प्रासाद है। पुरुषोंके अर्थसिद्धिदाता यह प्रबल्वनायक हैं। यह शेषस्थापित शेषमाधव हैं; इनके भक्तगण संवर्त्त वह्निमें भी दग्ध नहीं होते। शङ्खासुरके वध करनेवाले शङ्खमाधव इस जगह अवस्थित हैं। यह परम ब्रह्मरसायन सरस्वतीप्रवाह हैं; इस जगह गङ्गाके साथ इनका सङ्गम हुआ है, यहां स्नान करनेसे मनुष्य फिर भूतलमें उत्पन्न नहीं होते। यह श्रीविन्दुमाधव हैं, यह साक्षात् लक्ष्मीपति हैं; श्रद्धापूर्व्वक इनको प्रणाम करनेसे गर्भवास नहीं होता,

दारिद्र्य और व्याधिपीड़न नहीं होता, यम भी इनके भक्तको नमस्कार करते और यही नादविन्दु स्वरूप और अमूर्त्त परब्रह्म हैं। पञ्चब्रह्मात्मसंज्ञक यह पञ्चनद तीर्थ है; इसमें स्नान करनेसे पञ्चभूतमय देह धारण नहीं करना पड़ती। जिनके प्रसादसे काशीमें नर इहकालमें और परकालमें परम मङ्गल लाभ करते हैं, यह वही मङ्गलागौरी हैं। मयूखमण्डित, तमोहारी यह मयूखादित्य हैं। यह दिव्यतेजोदाता गभस्तीश नामक महालिङ्ग हैं। इस जगह मार्कण्डेय मुनिने निज नामसे आयुःप्रद लिङ्गकी प्रतिष्ठाकर महातपस्या की थी। यह त्रिलोकीविश्रुत किरणेश्वर लिङ्ग हैं; इन्हें प्रणाम करनेसे सूर्य्यलोकप्राप्ति होती है। यह पातकधावन धौतपापेश्वर लिङ्ग हैं। यह भक्त निर्व्वाणकारी निर्व्वाण नरसिंह हैं। यह महामणिभूषण मणिप्रदीप नाग हैं; इनकी अर्चना करनेसे नागका भय नहीं रहता। यह कपिलमुनि स्थापित कपिलेश महालिङ्ग हैं; इनके दर्शनसे मानवकी बात तो दूर रही, कपि पर्य्यन्त मुक्त हो जाते हैं। यह प्रियव्रतेश्वर लिङ्ग दिखाई देते हैं; इनकी अर्च्चनासे लोग सर्व्वप्रिय होते हैं। यह कलि और कालभयनिवारक श्रीकालराजका मणि-माणिक्य रचित श्रेष्ठ आयतन है; भगवान् कालराज निजभक्तगणका पाप भक्षणकर रक्षा करते और दैवविघ्नकारी पापात्माओंको शत शत यातना दे विदूरित करते हैं। यह रमणीय मन्दाकिनी प्रवहमाणा हैं, यह काशीमें तपस्या करनेके लिये आई थीं, किन्तु काशीवासके सुखमें मुग्ध हो, अब स्वर्ग जानेमें विरत हैं; इनमें यथाविधि स्नान और पितृतर्पण करनेसे, पापकारीको भी नरकका दर्शन करना नहीं पड़ता। काशीका सब लिङ्गोंके रत्न यह रत्नेश्वर लिङ्ग हैं, इनके प्रसादसे बहुरत्न भोगकर निर्व्वाण महारत्नको कौन नहीं पा सकता? यह कृतिवासेश्वरका वृहत् प्रासाद है; इन्हें दूरसे देखनेपर भी मनुष्य कृतिवासका पद लाभ करते हैं। यह कृतिवासेश्वर ही सब लिङ्गोंके मौलिस्थानीय, ओङ्कारेश शिखा, त्रिलोचन ही लोचन, गोकर्णेश्वर और भारतेश्वर ही कर्ण विश्वेश्वर और अविमुक्तेश्वर उभय दक्षिण करद्वय, कर्णेश्वर और मणिकेश्वर ही वामकरद्वय, कालेश्वर और कपर्दीश्वर ही सुन्दर चरणयुगल, ज्येष्ठेश्वर नितम्ब, मध्यमेश्वर नाभि, महादेव ही जटाजूट, श्रुतीश्वर शिरोभूषण, चन्द्रेश्वर हृदय, वीरेश्वर आत्मा, केदारेश्वर लिङ्ग शुक्रेश्वरको महात्मा लोग शुक्र कहते हैं। अपरापर कोटि परिमित जितने शिवलिङ्ग हैं, वह देहके नख, लोम और भूषण गिने जाते हैं। जो इनमेंसे दोनो दहिने हाथ हैं, वह उभय मोहसमुद्रमें पतित, जीवगणके अभयदाता

और नित्य मुक्तिविधाता हैं। यह भगवती दुर्गा और यह पितृलिङ्ग हैं। यह चित्र-घण्टेश्वरी और यह घण्टाकरण रुद्र हैं, यह ललितागौरी हैं, यह अद्भुत विश्वाक्षी हैं, यह आशाविनायक हैं, यह पितृगणके पिण्डदानमें परम ब्रह्मदाता विचित्र धर्म्मकूप है। यह विश्वजननी विश्वभुजा देवी और नियत त्रिलोकीपूजिता प्राणमोचनी बन्दीदेवी हैं। यह त्रिलोकपूज्य दशाश्वमेध तीर्थ है; इस जगह वारत्रय आहुतिमात्रसे अग्निहोत्रका फल मिलता है। सकल तीर्थोत्तम यह प्रयाग स्रोतः, प्रयोक्ततीर्थ, गङ्गाकेशव, यह श्रेष्ठ मोक्षद्वार है और इसीको स्वर्गद्वार कहते हैं।

त्रयस्त्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंश अध्याय ।

ज्ञानवापी-प्रशंसा ।

स्कन्दने कहा,—हे कुम्भयोने! इस तरह कृशाङ्गी कलावती एक एक चित्रपटमें सब देखकर स्वर्गद्वारके सम्मुखभाग मणिकर्णिकाको फिर देखने लगीं। इस जगह स्वयं शङ्कर संसार भुजग-दष्ट जीवगणके दाहने कानको दाहने हाथसे पकड़कर तत्त्वज्ञान उपदेश देते हैं। जो गति कपिलयोग या सांख्ययोग अथवा व्रतकलापसे भी अगम्य है, उसीको यह भूमि अवलीलासे देती हैं। यह विष्णुभवन वैकुण्ठधामहै विष्णुभक्तगण मुक्तिके लिये सदा हो मणिकर्णिकाका ध्यान किया करते हैं। द्विजगण यावज्जीवन अग्निहोत्र अथवा यथाविधि ब्रह्मयज्ञ अनुष्ठान करके भी चरमको मुक्ति पानेके लिये श्रीमणिकर्णिकाके शरणागत होते हैं। क्षत्रियपुङ्गव भूरि दक्षिणा दानसे भूयो यागयज्ञकर अन्तमें मुक्तिके लिये श्रीमणिकर्णिका होके पदतलमें लोटते हैं। नियत पातिव्रत्य-धर्म्मपालिनी रमणी भी पतिको अनुगामिनी हो अन्तकालमें मोक्षकी आशासे मणिकर्णिकाका आश्रय लेती हैं। न्यायोपार्जित धन वैश्यगण भी सत्पात्रको दानकर अन्तमें मुक्तिकी आशासे श्रीमणिकर्णिकाकी शरण लेते हैं, न्यायमार्गगामी सत्शूद्रगण भी स्त्रीपुत्रादि त्यागकर निर्वाण लाभके लिये श्रीमणिकर्णिकाका आश्रय लेनेको लालायित होते हैं। जितेन्द्रिय आजीवन ब्रह्मचारिगण भी मुक्तिके लिये मणिकर्णिकाका आश्रय लेते हैं। पञ्चयज्ञरत गृहस्थाश्रमी अतिथिगणको सुतृप्त करके भी अन्तमें श्रीमणिकर्णिकाकी सेवा करते हैं। संयतेन्द्रिय वानप्रस्थवासिगण मुक्तिके उपायसे ज्ञात होकर परिणाममें श्रीमणिकर्णिकाको भजते हैं। मुमुक्षु, एक दण्डिमतावलम्बी नानाशास्त्रसे मणिकर्णिकाको ही एकमात्र मुक्तिका साधन जान इसके सेवा-परायण होते हैं। त्रिदण्डिगण काय, मन और वाक्यको दण्डित

करके भी मुक्तिके अभिलाषसे मणिकर्णिकाकी शरण लेते हैं। प्रव्राजकगण चञ्चल चित्त संयतकर निःश्रेयसश्रीलाभके लिये मणिकर्णिकाका आश्रय लेते हैं। एकदण्डव्रतधारी मुक्तिके लिये मणिकर्णिकाको भजते हैं। मुक्तिलाभेच्छु, शिखा जटा या कौपीनधारी,—मुण्डितमुण्ड या नग्न कौन मनुष्य मुक्तिदायिनी मणिकर्णिकाकी सेवा नहीं करते? जिन लोगोंकी तपश्चरण या दानमें शक्ति नहीं है और योगाभ्यास नहीं है, उन्हें मणिकर्णिका मुक्ति देती है। हे मुने! मुक्तिके सहस्र द्वारा होनेपर भी मणिकर्णिका अवलीलाक्रमसे जैसी मुक्ति देती है, वैसी और कोई भी नहीं है; क्या अनशनव्रतावलम्बी और क्या त्रिसन्ध्याभोजी दोनोंको ही मणिकर्णिका अन्तमें निर्व्विशेष मुक्ति देते हैं। कोई यथाविधि पाशुपतव्रतका अवलम्बन करे और कोई हृदयसे मणिकर्णिकाका स्मरण करे, इन दोनोंकी मरनेपर समान गति होती है; अतएव झटपट सब त्यागकर मणिकर्णिकाकी ही सेवा करेंगे। जो मणिकर्णिकामें अवगाहनकर स्वर्गद्वारमें जाते हैं, उनका पाप धौत होता है और स्वर्ग भी दूर नहीं रहता। स्वर्गद्वार स्वर्गभूमि और मणिकर्णिका मोक्षभूमि है, अतएव इस पृथ्वीमें ही स्वर्ग और अपवर्ग वर्त्तमान हैं;—ऊपर या नीचे नहीं। जो मणिकर्णिकामें स्नानकर बहुत कुछ दान करते हुए स्वर्गद्वारमें प्रवेश करते हैं, वह नरकमें नहीं जाते। कविगणने स्वर्गशब्दका अर्थ सुख और अपवर्गशब्दका अर्थ महासुख निरूपण किया है। मणिकर्णिकामें उपविष्ट जनको जितना सुख लाभ होता है, सिंहासनाधिरूढ़ देवराजको भी उतना सुख नहीं मिलता। समाधि अवस्थामें लोगोंको जितना सुख मिलता है, श्रीमणिकर्णिकामें वह सहज ही प्राप्त होता है। स्वर्गद्वारके पूर्व्व और देवनदीके पश्चिम सौभाग्य और भाग्यका एकमात्र आश्रय अनिर्व्वचनीय महाक्षेत्र मणिकर्णिका अवस्थित है। सूर्य्यकरस्पर्शसे जितने परिमित बालुकाकण उद्भासित होता है, उतने परिमित ब्रह्मालयको प्राप्त हुए, किन्तु यह मणिकर्णिका ज्योंकी त्यों है। मणिकर्णिकाकी चारो ओर इतने असंख्य तीर्थ हैं, जिनसे तिलमात्र भूमि शून्य नहीं है। जिनके वंशसम्भूत किसी मनुष्यने मणिकर्णिकामें देह त्यागकर मुक्तिलाभ की है, उनके वंशके उत्पन्न सन्तानगण यदि देवगणका तर्पण करें, तो उनके प्रभावसे उर्द्धतन और अधस्तन सप्तपुरुष उद्धार होते हैं। गङ्गाका मध्यस्थान, हरिश्चन्द्रमण्डप, गङ्गाकेशव और स्वर्गद्वार यह चतुःसीमावच्छिन्न स्थान ही मणिकर्णिका है; त्रिभुवन इस मणिकर्णिकाकी धूलीकणके बराबर भी नहीं है। इसके प्राप्त करनेके लिये ही त्रिलोकके सब लोग यत्न करते हैं। इसतरह काला-

वतीने बारबार चित्रपटको देखकर श्रीविश्वेश्वरके दक्षिण भागमें ज्ञानवापीको देखा। दण्डनायक, सम्भ्रम और विभ्रम गणाद्वय गुरुतर भक्ति उत्पादनकर दुर्वृत्तसे सदा इसके जलकी रक्षा करते हैं। पुराणशास्त्रमें महादेवकी जो अष्टमूर्त्ति कही गई है, उन्हींमें यह ज्ञानवापी उनकी जलमयी मूर्त्ति है। कलावती ज्ञानवापीको देख, क्षणकाल रोमाञ्चिततनु हुईं। उनका अङ्ग कांपने लगा, कपालसे स्वेद निर्गत हुआ और नयन आनन्दाश्रुसे पूर्ण हुए। कार्त्तिकने कहा, उनका शरीर स्तम्भित हुआ, मुख म्लान हुआ, कण्ठवाष्पावरुद्ध हुआ; चित्रपट हाथसे भूतलमें भ्रष्ट हुआ। उस समय वह क्षणकालके लिये आत्मविस्मृत हुईं। वह जान न सकीं, कि "मैं कौन और कहां हूं।" केवल सुषुप्तिदशासे परमात्माकी तरह निश्चलभाव हुईं। फिर उनकी परिचारिकागण त्वरान्वित हो इतस्ततः यह क्या हुआ! यह क्या हुआ! कहकर आपसमें पूछताछ करने लगीं। चतुरा दासीगण उनकी यह अवस्था देख, सात्त्विकभावकी समझ परस्पर कहने लगीं, "इन्होंने जन्मान्तरके किसी प्रणयी मनुष्यको देखा है; इसीलिये उसके मिलनसुखसे मूर्च्छाप्राप्त हुई हैं; नहीं तो यह सहसा अति सुन्दर चित्रपट निर्ज्जनमें देखकर मूर्च्छित क्यों होंगी!" वह सब इसी तरह उनकी मूर्च्छाका कारण स्थिरकर स्निग्ध उपचार द्वारा स्थिरभावसे परिचर्य्या करने लगीं। उनमें कोई कदलीपत्रके पङ्खे द्वारा हवा देने लगीं, किसीने हाथमें मृणालवलय पहना दिया, किसीने सुस्निग्ध चन्दन लेपन किया, किसीने अशोकपत्र द्वारा उनका शोक दूर किया। किसीने प्रियविरहसे सन्तप्त उनकी देहलताको धारायन्त्रोत्थित जलकणा द्वारा सिक्त किया, किसीने भीगे वस्त्रसे उनकी देह आवृत की, औरोंने उनके अङ्गमें कर्पूरचूर्ण लेपन कर दिया। किसीने उनके लिये पद्मपत्रकी कोमल शय्या रचना की, किसीने उनके अङ्गसे हीरकमय भूषण उतार स्तनमण्डलमें मुक्ताहारकी रचना कर दी। किसीने चन्द्रानना शीतलस्रावी चन्द्रकान्तशिलातलमें उन कृशाङ्गीको शयन करा दिया। सखियोंको इस तरह परिचर्य्या करते देख बुद्धिशरीरिणी नामक एक सखीने अति सन्तप्त हो कहा, मैं इनकी सन्तापहर महौषध जानती हूं, तुम लोग यह सब उपचार शीघ्र दूर हटाओ। मैं इन्हें अभी सन्तापहीन करती हूं, कौतुक देखो। यह चित्रपट देखकर विह्वल हुई थीं, अतएव इस चित्रपटमें इनकी कोई प्रणयभूमि निश्चय ही है; इसके स्पर्शसे यह सन्ताप त्याग करेंगी। तब बुद्धिशरीरिणीकी यह बात सुनकर उनकी परिचारिकाओंने उनके सामने चित्रपट रखकर कहा, सखि कलावती! अपने

नयनानन्दकारी इष्टदेवताका चित्र देखो। कलावती भी इष्टदेवताका नाम सुन चित्रपटके स्पर्शकी अमृतधारासे सिक्त होकर ही मानो चैतन्य लाभकर उठ बैठीं। अवग्रहविशोषित ओषधि वृष्टिधाराभिक्त होनेसे जैसी प्रफुल्ल होती है, उसी तरह प्रफुल्ल होकर कलावती फिर ज्ञानदायिनी ज्ञानव्यापीको देखने लगीं, तब चित्रार्पित उस ज्ञानवापीको देख पूर्व्वजन्मका समस्त वृत्तान्त उनके स्मृतिपथपर चढ़ा और मन ही मन ज्ञानवापीकी अद्भुत महिमा फिरसे विचारकर कलावतीने कहा, "ज्ञानवापीकी भी कैसे आश्चर्य्यकी महिमा है! उसके इस चित्रदर्शनसे भी मुझे जन्मान्तरका समुदय वृत्तान्त स्मरण हुआ।" यह कहकर कलावतीसुन्दरी, ज्ञानवापीके प्रभावसे अपने पूर्व्वजन्मका वृत्तान्त सखियोंसे कहने लगीं। कलावतीने कहा, "मैं पूर्व्वजन्ममें ब्राह्मणकी कन्या थी। मेरे पिताका नाम हरिस्वामी, माताका नाम प्रियम्वदा और मेरा नाम सुशीला था। मुझे एक विद्याधर हरणकर ले गये। राहमें निशीथकालमें मलयाचलके समीप एक राक्षसने उनका विनाश किया, उन्होंने भी उसका वध किया। तब राक्षसने शापमुक्त हो दिव्यदेह धारण की। उन्हीं विद्याधरने अब मलयकेतुके औरससे जन्म ग्रहण किया है, मैं भी कलावती नामसे कर्नाट राजाकी कन्या हुई हूं। ज्ञानवापी दर्शनसे क्षणमें ही मुझे ऐसा ज्ञान हुआ।" वह बहिश्चरीरिणी और अपरापर परिचारिकागण उनकी यह बात सुनकर आनन्दित हुईं और अन्यान्य पुरस्त्रीगण कलावतीको प्रणामकर बोलीं, अहो ज्ञानवापीकी कैसी अद्भुत महिमा है! अब वह कैसे लाभ की जा सकती है? जिन्होंने ज्ञानवापीको नहीं देखा, इस मर्त्तलोकमें उनके जन्मको धिक् है। हे कलावती! आपके चरणको नमस्कार है, आप हमारी कामना पूर्ण करिये। महाराजसे कह हमलोगोंका वहां ले जाकर जन्म सार्थक करिये। अहो कलावती! हमलोग आज प्रतिज्ञा करती हैं, कि ज्ञानवापीका दर्शनकर महा सुखभोग करेंगी और अवश्य करेंगी। जिसके चित्रदर्शनसे आपको ऐसा ज्ञान समुद्भूत हुआ, उसका नाम "ज्ञानवापी" होना अवश्य ही उचित है, कलावतीने "तथास्तु" कह, अङ्गीकारको छिपा, एक दिन प्रियकार्य्य समाप्त होनेपर यथोचित समयमें राजासे कहा, हे जीवितनाथ! आपके सिवा मेरे लिये दूसरी प्रियवस्तु कहीं नहीं है, आपको पतिलाभ कर मेरी सब कामना पूर्ण हुई है। हे आर्य्यपुत्र! एकमात्र मनोरथ अपूर्ण है, विचारकर देखनेसे वह आपको भी हितकर बोध होगा। अधीनतासे मेरा वह मनोरथ अति दुर्लभ है; किन्तु आप स्वाधीन हैं।